Chapter - 4

चतुर्थ अध्याय - डॉ. सूर्यदीन यादव की कहानियों का कथ्य एवं शिल्प : विशिष्ट आयाम

यादव जी की कहानियों का कथ्य एवं शिल्प : विशिष्ट आयाम :

यादव जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी परिवेशगत समस्याओं को संवेदनशील हृदय द्वारा गहन अभिव्यक्ति प्रदान की हैं। जिनमें इनका सजग, सर्तक, भावुक और सामाजिक चिंतक का रुप उभरकर सामने आता हैं। यादव जी को सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में बढ़ती विसंगतियाँ सर्वाधिक परेशान करती थी। इसलिए समाज की सबसे उपेक्षित पात्र नारी की त्रासद स्थिति एवं सामान्य वर्ग के त्रासद स्थिति को देखना उनके लिए सर्वाधिक दु:खदायी था।

यादव जी के कहानियों के पात्र अधिकांशत: निम्नवर्गीय लोग हैं। उन्होंने इन लोगों के जीवन को गहराई से परखा हैं। यादव जी को इन लोगों के जीवन-यथार्थ को पहचानने और सत्य ढ़ंग से अभिव्यक्ति देने में पर्याप्त सफलता ले ली हैं। इनकी कहानियों में मुख्य रुप से सामान्य और मुस्लिम सन्दर्भ, स्त्रियों और दाम्पत्य प्रेम, मामूली आदमी की दस्तक, राजनैतिक, आँचलिक समस्याओं का निरुपण हैं। वैदिक काल से आज तक सदैव ही नारी का शोषण, सामान्यवर्ग का शोषण, अल्पसंख्यको का शोषण, उत्तरोत्तर बढ़ता गया हैं। समाज के सभी वर्गो और वासनालोलुप शासक वर्ग में भी नारी और सामान्य वर्ग के शोषण का कटु सत्य कल्पना में भी हराने की सामर्थ्य रखता हैं। नारी और सामान्य वर्ग का शोषण उसमें चेतना लाकर ही रोका जा सकता हैं। इसका एक उपाय हैं कि इन वर्गो को योग्य शिक्षा दी जाये।

समाज में नारी जीवन की नियति सामान्य जीवन के शोषण के विविध पहलु और पुरुष के संवेदन शून्य की आवाज को बुलन्द करने के लिए ही यादवजी ने इन कहानियों की रचना की।

कथ्य के विशिष्ट आयाम :

आधुनिक समय में जीवन के हर स्तर पर जो अतिवादी, अधूरापन, एकांगिता, असंतुलन और दोहरापन व्याप्त हैं। तथा सत्य और तथ्य के बीच जो विसंगतियाँ उभरी हुई हैं। यादवजी की कहानीयाँ इसका विरोध करती हैं। स्वातंत्र्योत्तर साहित्यकारों में यादव जी ऐसे विशिष्ट साहित्यकार हैं। जिन्होंने लेखन को ही जीविकोपार्जन का साधन बनाया था। मात्र श्रमजीवी होने के कारण वह भी अभाव ग्रस्त जीवन जीते हुए आर्थिक विषमताओं

से गुजरे हैं । उनका साहित्य प्रेक्षक का नहीं, भोक्ता का हैं । उन्होंने सहानुभूति के आधार पर नहीं, स्वानुभूति के आधार पर साहित्य रचा हैं । फलस्वरुप उनके कहानियों के पात्र भी अभाव ग्रस्त जीवन जीते और आर्थिक विषमताओं से जूझते नजर आते हैं । गरीबी ऐसा अभिशाप हैं । जिसमें भाई-बहन के पवित्र प्रेम और माँ की ममता का कोई मूल्य प्रतीत नहीं होता । पेट की क्षुधा के सामने सब रिश्ते-नाते ताक पर रख दिए जाते हैं। इनकी कहानियाँ रोटी के लिए जिस्म बेचती नारियाँ बेघर पति-पत्नियाँ लावारिशों और भीखमंगों के जीवन को दयनीय यथार्थ रुप में खोलकर हमारे सामने रख देती हैं । यादवजी की कहानी के कई पात्र रोटी की तलाश में यत्र-तत्र भटकते और अपराध करते नजर आते हैं । इनके साथ-साथ पुरुष के ढ़ंग के सामने, स्त्री कितनी विवश हैं । इसकी भी झलक हमें इनकी कहानियों में देखने को मिलती हैं । नवीन तकलीफ 'का प्रयोग किये बिना ही यादवजी कथ्य की शक्ति से कृति को सफल बना देते हैं । कहानी में कथ्य के सारे स्तर समानांतर और गुँथे हुए चलते हैं । जिसके साथ मनोवैज्ञानिक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आँचलिक, पौराणिक और जटिल मानवीय प्रश्न गहरे तनाव के साथ उभरते हैं । कथ्य के इन्हीं विशिष्ट आयामो की संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत हैं ।

(१) निम्न वर्गीय पात्र :

यादवजी ने धूप मिट्टी और दर्द से लतपथ मामूली आदमी को जितना प्यार और आदर दिया हैं, उसका तो कोई जवाब भी नहीं हैं । इस तरह यादवजी के कहानियों में स्त्री की जो दमदार और गरिमामय उपस्थिति हैं वह सराहने योग्य हैं । यादवजी की कहानियों में जहाँ स्त्री हैं, वहाँ प्रेम हैं । जितने विविधता भरे स्त्री - चरित्र यादवजी की कहानियों में हैं । वैसा शायद ही कहीं ही देखने को मिलता हो । और ये ज्यादातर स्त्रियाँ एक साधारण बहुत साधारण और अभाव भरे जीवन के बीच में उठती हुई, अपने संघर्ष, प्रेम और धैर्य से आसपास की चीजों को मानो आलोकित सी किये रहती हैं । इसी जीवन के बीच मानों किसी बड़े जीवन की ओर इंगित सी करती हैं। बड़े पैमाने पर कहा जाए तो मामूलीपन का यह गौरव या मामूली सी यह गरिमा यादव जी के कहानियों का केन्द्रीय तत्व या आधार पीठिका हैं । यादव जी की कहानियाँ उनके निजी जीवन के संघर्ष से सीधे-सीधे जुड़ी हुई हैं । इसीलिए यादवजी के दर्द के साथ-साथ मानो वे खुद-ब-खुद मामूली आदमी के संघर्ष की गाथा कहने लगते हैं ।

श्रीमती कांति अय्यर के शब्दो में — 'दहशत का हथौड़ा' कहानी बहुत ही अच्छी कहानी हैं । यह प्रेमचन्द्र की कहानी के स्तर की अति उत्तम कहानी हैं । कथा, शिल्प-विधान, भाषा-शैली की दृष्टि से भी एक श्रेष्ठ रचना हैं ।"[१]

दो मित्रों की मित्रता का अनुपमेय उदाहरण हैं तो बिलगता का दर्द-अलगू चौधरी और जम्मू शेख प्रेमचन्द्र के कहानी पात्र यहाँ पर शिवचरन और तहमत की दोस्ती वाकई भावविभोर कर गई ।

'फाटक खुलने के इन्तजार में' कहानी में भी आम जीवन व्यतीत करने वाली लछिमिया के जीवन की दास्तान का वर्णन हैं जो स्त्री चरित्र को काफी ऊँचा उठाती हैं । लछिमियाँ निम्न जाति में जन्म लेने के बावजूद उसकी आत्मा शुद्ध और पवित्र हैं । तो वहीं पर 'बिना बाप का बच्चा' कहानी में छददर के चरित्र का चित्रण करती कहानी हैं जो नईकी को हिफाजत करने में असमर्थ हैं । तब नईकी कहती हैं कि– " बच्चे को पैदा करने वाली माँ उसके बाप को कहाँ से पैदा करे ।"[२] धिक्कार हैं ऐसे स्वार्थी लम्फट मरदों को' जो औरत के साथ खिलवाड़ करके मुँह छिपाते है । एक औरत सभा के बीच रो रही हैं. बच्चे के बाप के लिए । लेकिन तुम में से किसी की सिरहिरी नहीं हिल रही हैं। लानत हैं ऐसे मरदों पर ! पंचो, मैं ही अपने बच्चे का बाप हूँ । नहीं चाहिए माँ के बच्चे को बाप ।

'परदेशी की एक रात' में ग्रामीण एवं भारतीय परिवेश में भी विदेशी सभ्यता का असर दिनों दिन बढ़ता जा रहा हैं । इसकी पुष्टि यह कहानी कराती हैं । परदेशी के गाँव में आते ही कई लोग आये । राम जोहार करके चले गये । वह देखता किसी को पास बैठने की फुरसत नहीं । गाँव के खेतो तक ताला लगा हैं । भाग - दौड मची हैं । मानों काम करने की होड मची हैं । यादवजी सभ्यता और संस्कृति के लुप्त होते जाने की बात लेकर अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं । 'वह रात ' कहानी में यादवजी ने सामाजिक व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश और क्षोभ व्यक्त किया हैं । एक और गरीबी के कारण कन्या को बेचा जा रहा है तो दूसरी और पैसे के बल पर आधेड़ एवं मरणासन्न व्यक्ति के लिए पत्नी खरीदी जा रही हैं । आर्थिक वैषम्य के कारण ही समाज में कन्याओं की बोली लगाई जा रही हैं । मामूली आदमी को दर्द की झलक इनकी हर एक कहानियों में देखने को मिलती हैं । तभी तो चन्दा कहती हैं कि–

"सात-आठ साल की थी, तभी दादा ने विवाह कर दिया था । यदि मैं बियहे घर नहीं जाती तो दादा को दु:ख होता । बाबूजी समाज में मुँह दिखाने लायक न रहते। जाति-बिरादरी के लोग उन पर थूकते । मुझे कुल-गोडनी कहते । कमू मैं नहीं चाहती मेरी वजह से मेरे माँ-बाप की बदनामी हो ।"[३]

'परदेशी की वह रात' कहानी मामूली आदमी के जीवन की मौलिक दास्तान हैं। भोला की स्थिति ठीक उस प्रकार हैं जैसे कि– हरे रामा, बिरहा अगन लगाई ऐसी, तन-मन दियो जलाय सरवर के रहते भी पंछी प्यासा उड़ि-उड़ि जाय ।

पारिवारिक दायित्व निभाने के लिए भोला अपनी पत्नी सरिता को अपने साथ नहीं रख पाता हैं । वह कहती हैं कि–

"बड़े निर्मोही हो जाते हो । जाने के बाद जैसे भूल जाते हो । चीठ्ठी-चौपाती भी नहीं भेजते कि पढ़कर जी को तसल्ली मिलती । तुम्हें क्या पता बिन पानी की मछली की तडप । तडपने के साथ ओर भी यातनाएँ झेलती । मेरा घूमना-फिरना दूभर हो गया था । लोग मुझे सुनाकर – गाते परदेशी न आए नयना तरसे ।"[४]

'भैया' कहानी का कथ्य इतना हैं कि थोडा सा पढ़ लिख लेने वाला युवा समाज अनुकरण के पीछे अंधा हुआ जा रहा हैं । और अपनी भाषा एवं संस्कृति को तुच्छ समझने लगा हैं । तथा परभाषा एवं संस्कृति को मूल्यवान मानता हैं । जबकि गाँव के गँवार लोग अभी भी अपनी भाषा और संस्कृति से प्रेम करते हैं । लेखक समझाते हुए कहते है कि भैयाजी की कोई जाति नहीं होती हैं । भैया जी का अर्थ होता हैं भाई साहब। यह सच हैं कि यादव जी ने समाज में 'बडे' कहे जाने वाले लोगों की क्षुद्रताओं को जहाँ देखा-परखा वहाँ प्रस्तुत किया है वहाँ समाज के तथा कथित 'छोटे' लोगों में रहे बडप्पन को रेखांकित किया हैं । श्रीमती कांती अय्यर लिखती हैं कि– " सूर्यदीन यादव मानव मन, मानव वेदना, मनोभावों की अभिव्यक्ति के अति कुशल चितेरे हैं । उनका कथानक मूल्य पात्र के साथ – साथ सूक्ष्म अवलोकन से समृद्ध होता हुआ अनायास आगे बढ़ता हैं । उनके लिए समाज ही कुटुम्ब हैं । उसी कौटुम्बिक भावना, ममता, स्नेह चिंतन से वे अपने छोटे-छोटे पात्रों के सहारे कथा को आगे बढ़ाते हैं।"[५]

(२) स्त्री का चरित्र और दाम्पत्य जीवन :

यादव जी की कहानियों में स्त्री और दाम्पत्य जीवन का वर्णन सबसे अलग गंभीर और व्यापक हैं । यहाँ स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को व्यक्तिगत कुंठाओं और समस्याओं के स्तर से ऊपर उठाकर व्यापक सामाज़िक, धार्मिक, राजनैतिक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया हैं।

एक और वे आँखे कहानी में महसूस करते है कि माँ – बेटी दोनों रो रही हैं । इसका मतलब माँ-बेटी के पैसे से पेशेवर चुन्नीलाल बेखबर हैं, "साला बनता हैं बड़ा धार्मिक-इज्जतवान। उसकी पत्नी ऐसी पवित्रता बनती हैं कि उसकी जैसी सीता न हो । गुलाब

सी खिली गुलाबी दमकती रहती हैं । देखने में भोली-भाली सीधी सादी जैसे कुछ जानती ही नहीं। हे भगवान उसके कितने ग्राहकों के पैसे बाकी होगे । बाप सिलाई करता हैं। माँ-बेटियाँ बाकी पैसे का हिसाब रखती हैं । गुलाबी सज-संवर कर रोज दूसरी मंजिल की लॉम्बी में बैठकर आने-जाने वालों को आँखो के इशारों से तकाजा करती हैं ।"[६] तो दूसरी और 'बिना माँ का बच्चा' की प्रथा का क्रान्तिकारी चरित्र हैं । एक ग्रामीण युवती होते हुए भी इन्सानियत के प्रति अपनी सोच और करुणा से इतनी ऊपर उठ जाती हैं कि किसी युवा नायिका जैसी जान पड़ती हैं । जब वह आज की सड़ी हुई व्यवस्था के लिए जिम्मेदार पुरुषों को फटकारते हुए कहती हैं । कि "स्त्री को कठपुतली समझते हो । मैं अर्धांगिनी हूँ । आँधे की हिस्सेदार समझे । बैठकर खर्च-खुराकी लूँगी । साझेदारी का सौदा साझेदारी में फबता है । यदि मैं बच्चा पैदा करने वाली मशीन हूँ, तो तुम भी उस बच्चे को खिलाने-पिलाने, साफ-सूफ करने, ढ़ालने के एक यंत्र हो । सेंत-मेंत में बाप बनने का दावा करते हो ।"[७] तो लगता हैं वह सच ही हमारा आपका दु:ख और आक्रोश प्रकट कर रही हैं और देखते ही देखते प्रभा एक पत्नी नहीं आम स्त्री की शक्ति प्रतीत होने लगती हैं । तो दूसरी और 'नशा' कहानी की संगीता की करुण कथा पढ़कर किसका हृदय हिल नहीं जाता यह कहानी औरत की मौन आक्रमक्ता से थोड़ा हटकर स्त्री की नियति तय कर देने वाले विश्वासों-अंध विश्वासो के शिकार स्त्री की कहानी हैं जेठ द्वारा नशा करने के बाद दुर्व्यवहार करने पर संगीता कहती हैं कि "उनके बाबू भाग जाओ यहाँ से, इतनी रात यहाँ क्यों आये ? तुम्हें जरा-सी लाज-शरम नहीं क्या ? कोई देखेगा तो क्या कहेगा ।"[८] नारी के प्रति यादवजी का दृष्टिकोण उदारवादी हैं । वे उसका अस्तित्व केवल पुरुष की वासना पूर्ति का साधन बनने में ही नहीं मानते अपितु उनकी दृष्टि में वह हर क्षेत्र में पुरुष के समकक्ष पहुँचने में समर्थ हैं । यादवजी स्त्री को अभिशाप न मानकर वरदान मानते हैं । मटियांनी इस तथ्य को यो कहते हैं "औरत दो पर्वतों के बीच भले ही नदी-जैसी बहती हुई दोनों ओर की धरती सींचती रहे मगर पुरुष तो दो वादियों के बीच भी पर्वत जैसा ऊपर ही उठा रहना चाहता हैं ।"[९] पुरुष अपनी आर्थिक स्थिति में कितना ही दीन-हीन हो, स्त्री के सामने अपने पराक्रमी रुप को ही दिखाना चाहता हैं । उसके अन्दर पुरुष होने का अहंकार हैं तो अपने जातीय गुणो का दंभ भी हैं । वह अपनी पहचान उन्हीं में बनाये रखना चाहता हैं । पुरुष भले ही दस पटरानीयाँ रख ले, किन्तु नारी को कतई अधिकार नहीं कि वह अपनी त्रासदी की लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन करे । स्त्री समझती हैं । कि उसका काम केवल पत्नी और माता के काम को पूरा कर देना हैं । पर इतना ही नहीं, उसका काम अपनी जीविका उपार्जन करना भी हैं । उसका काम समाज में अपना स्वतंत्र स्थान बनाना भी हैं । तो दूसरी और 'किरण'

कहानी की नायिका दीपा हैं । जो अपने पिता जी से कहती हैं कि "बाबूजी मैं एल. एल. बी. करुँगी दबी-दबाई शोषित लाचार स्त्रीयों के मामले हल करके उन्हें न्याय दिलाऊँगी अबलाओं की अवहेलना मैं बर्दास्त नहीं कर सकती । मैं बता दूँगी की नारी क्या नहीं कर सकती । नारी को समाज में मान-प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए सभी-सुविधा और सारे अधिकार नारी को मिलने चाहिए ।"[१०] नारी को मनुष्य प्रतिशक्ति और पुरुष के अत्याचार के विद्रोह के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं । स्त्री को आद्यशक्ति मानने वाले इस महान देश का इतिहास हमें बताता हैं कि व्यवहारत: उसे एक वस्तु से अधिक कुछ नहीं समझा गया । तो दूसरी और 'वह रात' कहानी में चंदा अपनी वेदना कमू से कहती हैं कि "कमू उस देहात में ..... ही शाम मैं सहम गई । लगा मुझे किसी जेल में बन्द कर दिया गया हो, जैसे किसी जुल्म के आरोप में, और रात फाँसी पर चढ़ा दिया जाएगा। अनचाहे मन से किसी बात को स्वीकारना बड़ा कष्टदायक होता हैं । गाँव का रिवाज भी अजब का । भूखी, तरसी, बेसबरी आँखे । हर तरफ से ताँक - झाँक लगी थी । लोग ऐसे देखने दौड़े जैसे नये गाँव में ऊँट आया हो ।"[११]

अंतत: एक नारी की अंतर्वेदना अर्न्तद्वन्द एवं तनाव तथा शारीरिक-मानसिक पीड़ा को इनकी कहानियों में अनुभव किया जा सकता हैं । तो दूसरी और "बिना माँ का बच्चा" कहानी में नईकी मरदो की पोल खोलते हुए कहती हैं कि, "दहिजरे-दहजारिन। अपनी फूटी हांडी कोई नहीं झाँकता । सब कितना कुकरम करके पचा लिये हैं । खुद को कोई नहीं देखता । हमें छिनारा लगाते हैं । मुँह चटे घर में पत्नी होती हुए भी दूसरी औरतों के पीछे छुछुयाया करते हैं । छिनारिनें घर के पति होते हुए भी आडे-ओटे पर पुरुषो से तबियत भरती रहती हैं । अरे मैंने पति के न होने पर कुछ किया तो सारे गाँव वालों की छाती क्यों फटती हैं ।"[१२] सच ही यादव जी ने जीवन के उन पक्षो को छुआ हैं जिन पर हमने कभी सोचा ही नहीं । पंचो के सामने नईकी को बच्चे का बाप प्रस्तुत करने पर जब छददर बाप बनने से इन्कार करता हैं। तब लेखक ने नईकी के बागी स्वभाव का वर्णन करते हुए लिखा हैं कि "पंचों, मैं ही अपने बच्चे का बाप हूँ। नहीं चाहिए माँ के बच्चे को बाप । चल बेटा कहीं दूर चले इन नामर्द मजदूरों और किराये के टट्टुओं के गाँव में नहीं रहना हैं । चलों कहीं दूर दूसरा नाम समाज निर्माण करेंगे । जहाँ पर किसी बच्चे को बाप ढूँढ़ने की जरुरत नहीं पड़ेगी ।"[१३] पुरुष एक साथ तीन-तीन पत्नियाँ रखकर भी समाज में सम्मानित हैं । किन्तु नारी के पुन: विवाह करने पर, अपनी आवश्यक्ता पूर्ति करने पर समाज उस पर अँगुली उठाता है । उसे तिरस्कार और लाँछन का शिकार बना देता हैं । तो दूसरी और 'लौट आती कहानी' में दहेज प्रथा

पर लेखक ने अपना आक्रोश व्यक्त किया हैं । दिल बहादुर कहते हैं कि – "हाँ दहेज ही बेटियों के लिए सबसे बड़ा रोग बन गया हैं । बड़ी बहन को दहेज कम दिया गया था । बेइज्जती करके उसे घर से निकाला गया था । उसे समझा-बुझाकर पुनः उसकी ससुराल भेज दिया गया था । लेकिन वह उन नर-राक्षसों के जुल्म को सह न सकी । ससुराल से ही कहीं गायब हो गई थी । एक हसे बाद किसी कुएँ से उसकी लाश मिली थी । पता नहीं उसे मारकर फेंक दिया गया था । या उसने खुद-खुदखुशी की थी । मैं आज तक नहीं जान सका ।"[१४] तो दूसरी और लेखक ने 'जगत जहाँ गीता रचना' कहानी में रचना की मनोवेदना को व्यक्त किया हैं । रचना गीता से कहती हैं कि "मैं सामाजिक बंधनों में जकड़ी थी । मेरी माँ कहती बिटियां जात दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती हैं । मैं सोचती बेटी का बढ़ना माँ-बाप को क्यों खटकने लगता हैं ।"[१५] तो दूसरी और 'ऊसर जमीन' कहानी में लेखक ने सवरकी की दर्द भरी वेदना का वर्णन किया हैं । सुधुआ हंमेशा उसे मारता-पीटता रहता हैं । दादा ने देखा – "एक कोने में मार खाकर गठरी-सी सिमती हुई संवरकी सिसक रही हैं । घर भर की मार गाली खाकर जैसे काठ मार गई हैं । बेचारी जाए कहाँ । माँ-बाप बचपन में ही मर गये । बाप की इकलौती संतान थी । खेत बारी घर-द्वार पट्टीदारों ने हड़प लिया ।"[१६] वह जान लेती है कि अपने घर का मतलब क्या होता हैं कि क्योंकि उसका पति सुधुआ घर छोड़कर शहर भाग जाता हैं । तब उसका भाई बुधुआ संवरकी पर जुल्म और अत्याचार करता हैं । नारी पुरुष के कंधे से कन्धा मिलाकर चल रही हैं परन्तु उसका दुर्भाग्य है कि वह पुरुष के आधीन हैं । पुरुष उसे खिलौना और बिछौना समझ रहा हैं । यथावसर उसका सामाजिक, आर्थिक और यौन शोषण किया जा रहा हैं । स्त्री का शोषण करने में पुरुष समाज, धर्म के ठेकेदारों और गुन्डों का हाथ हैं । तभी तो 'बच्चे का बाप कौन' कहानी में नईकी समाज के इन ठेकेदारों को ललकारते हुए कहती हैं कि – "यदि औरत नहीं होती तो न कोई पुरुष किसी का पति होता न बाप । पति और बाप बनने का दावा करने वाले मरदों तुम्हें औरतों के एहसानों के आगे झुकना चाहिए।"[१७]

लेखक के अनुसार नारी शोषण का मुख्य कारण आर्थिक बैषम्य हैं । एक वर्ग निर्धन वर्ग हैं, जिसमें पिता-पुत्री की और भाई-बहन की अस्मत बेचने के लिए विक्श हैं । तो दूसरी ओर धनी वर्ग है । जिसमें नारी को भोग - भाग्या समझा जाता हैं । उनके साहित्य में विवाहित, अविवाहित, परित्यक्ता, विधवा, प्रेमिका जिसकी सगाई टूट गई हो, ऐसी तथा घरेलू कामकाज करने वाली नौकरानी, भिखारिन, सभी की पीड़ा सम्मिलित हैं । कही बहू विवाह के कारण नारी शोषित हैं तो कहीं पर चरित्र पर शंका के कारण।

इसका जीता-जागता चित्रण "बच्चे का बाप कौन", कहानी में देखा जा सकता हैं । नईकी पहले पति की मृत्यु के बाद आधार-हीन जिन्दगी को सहारा देने के लिए तथा घर के वारिश के लिए छद्दर से अनैतिक सम्बन्ध रखती हैं तथा समाज के रीति-रिवाज का विरोध करते हुए कहती हैं कि –

"विधवा बनकर जीना भी कोई जीवन हैं । पति मर गया तो जैसे पत्नी का सब कुछ मर गया । वाह रे ढ़ोंगी समाज । हाथ की चूड़ियाँ फोड ली । गहने-गुरिये उतार दिये । माथे पर सेन्दूर-ढ़िकुली नहीं लगा सकती । अपने शौक नहीं पूरा कर सकती । पति नहीं तो जैसे जीवन और शरीर का सारा सिंगार छिन गया हैं । पति के मरते ही शरीर और जीवन की शोभा भी मर जाये- यह कहाँ का दस्तूर हैं ।"[१८]

नारी के सामने जब-जब रोटी का सवाल आया हैं, तब-तब कथाकार ने उसका पतन दिखलाया हैं । आर्थिक वैषम्य के कारण ही समाज में कन्याओं की बोली लगाई जा रही हैं । एक ओर गरीबी के कारण कन्या को बेचा जा रहा हैं तो दूसरी ओर पैसे के बल पर आधेड़ एवं मरणासन्न व्यक्ति के लिए पत्नी खरीदी जा रही हैं ।

पुरुष अपनी आर्थिक स्थिति में कितना ही दीन-हीन हो, स्त्री के सामने अपने पराक्रमी रूप को ही दिखाना चाहता हैं । उसके अन्दर पुरुष होने का अहंकार हैं, तो अपने जातीय गुणों का दंभ भी हैं । वह अपनी पहचान उन्हीं में बनाये रखना चाहता हैं । पुरुष चाहता हैं कि औरत एक जाति के रूप में, उन्हीं विश्वासों और मान्यताओं को स्वीकार करें । जो उसकी जातीय और धार्मिक पहचान को पुख्ता करते हैं । यानी पुरुष को इतना सामाजिक संरक्षण मिला हुआ हैं कि वह किसी परिवर्तन की जरुरत भी महसूस नहीं करता । अगर परिवर्तन जरुरी हैं भी, तो भी, वह उसकी अहम तुष्टि के बराबर नहीं जाना चाहिए ।

इसके विपरीत स्त्री यहाँ अपनी अस्मिता और सामाजिक स्थायित्व को खोजती दिखाई देती हैं । उसके स्वतन्त्र विकास और चिन्तक में आर्थिक स्थितियाँ जबरदस्त अवरोधक हैं । ये आर्थिक स्थितियाँ पुरुष के सामने भी हैं । लेकिन उसकी पुरुष होने की स्वतंत्रता और सामाजिक व्यवस्था में निर्णायक भूमिका एक हद तक उसके आत्म-सम्मान को बचा ले जाती हैं । स्त्री को परम्परा और संस्कारों ने सामाजिक रुप से बाँधे रखा हैं । उसके क्रिया कलापों पर इसका असर हैं ।

श्रीमती कांति अय्यर ठीक कहती हैं कि – "कितनी विचित्र विड़म्बना हैं कि हमारे देश की नारी अपने को पति के सामने कितनी दीन-हीन, लाचार और दासी के रुप में प्रस्तुत करती हैं । ये हमारे समाज के लिए लज्जा की बात हैं । माँ-बाप और

समाज ये लड़की जाति को पुरुष के गुलाम के रुप में ही पोषित किया हैं । नारी में स्वाभिमान की भावना, आत्म निर्भरता होनी चाहिए। किन्तु पुरुष की जीवन संगिनी बनने की तालीम नारी को किसी ने नहीं दिया हैं । इसी कारण पुरुष प्रधान समाज में भारतीय नारी उत्पीड़न, यातना, शोषण एवं तिरस्कृत जीवन जीने को लाचार बना दी गई हैं । यह परिवर्तन तभी आ सकता हैं जब उसे समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाय । उसे शिक्षा द्वारा स्वाबलम्बन की तालीम भी दी जाय। नारी समाज का आधा अंग हैं । उसकी शिक्षा-दीक्षा से भविष्य के लिए उत्तम पेढ़ी तैयार हो सकती हैं । बच्चे के प्रथम शिक्षक माँ-बाप ही होते हैं" ।[१९]

(३) सामान्य और मुस्लिम सन्दर्भ :

यादवजी रोजी-रोटी की तलाश में उत्तर-प्रदेश से लेकर गुजरात तक यात्रा करते रहे । इस दौरान सामान्य लोगों से कई दर्जे नीचे रह रहे । समाज के इन उपेक्षित लोगो में यादव जी ने इन्सानियत और आत्मीयता का जो गुण देखा वह आज के सभ्य कहे जाने वाले लोगों में कम ही नजर आता हैं । उनके इन्हीं अछूतों अनुभवों ने वैयक्तिक और साहित्यिक दायित्य ने उन्हें सामान्य के प्रति लेखिनी उठाने के लिए विवश किया। उनके कथा-साहित्य में सामान्य जीवन की दर्द भरी मार्मिक कहानियाँ हैं जिन्हें लेखक ने अपनी अनुभूतियो के आधार पर स्पष्ट किया हैं । इनमें शोषको के कटघरे में कैद, नारकीय जीवन बिताने के लिए विवश माँ-बहनों, आलीशान बंगलो से लेकर फुटपाथों-चौराहों तक चलने वाले देह व्यापार, व्यभिचार, अपराध और गलाजत भरी नैतिक दृष्टि से गंधाती-संड़ासभरी जिन्दगी, अत्याचार और शोषण, उच्चवर्ग की विलासिता, शासन के अत्याचार आदि का प्रमाणिक चित्रण हैं । इनका केन्द्रीय कथ्य शोषित-पीड़ित, सामान्य व्यक्ति की व्यापक संवेदना हैं ।

यादवजी का मूलस्वर सामान्य कथाकार का हैं । यादव जी सामान्यजन को किसी जाति विशेष से जोड़कर नहीं देखते थे । उनकी सामान्य जीवन सम्बन्धी संकल्पना जाति लिंग और आयु रहित हैं । उन्होंने सामान्यजन को जाति निरपेक्ष माना हैं । सामान्यजन को धर्म और शास्त्र की दुहाई देकर उन्हें सताया गया है, शिक्षा से वांचित करके उनका मस्तिष्क कुन्द कर दिया गया हैं । 'अपने आदमी' कहानी में लम्मरदारों के जुल्म से ग्रस्त गाँव वाले दबे हुए भयभीत हैं कि वे जुल्म के सामने सर ऊँचा करने का साहस ही नहीं करते। तभी तो ढ़ाहे काका कहते हैं कि "इन लम्मरदारों के मारे न तो ठीक से खेती-बारी हो पाती हैं न सुख-चैन से रहने को मिलता हैं ।"[२०] 'मन्दिर मस्जिद' कहानी

में लेखक का उदारत्व विचार सामने आये हैं – "पंड़ित जी हिन्दू और मुसलमान में क्या अन्तर हैं । धर्म सबका एक ही होता हैं । हिन्दू अपने भाषा में धर्मग्रन्थ को गीता कहते हैं । मुसलमान अपनी भाषा में उसी को कुरान कहते हैं । दोनों धर्म ग्रन्थों में एक ही बात हैं । उसी तरह से मंदिर और मस्जिद भी हैं । मुसलमान ईंट-पत्थर से बनी दीवाल के घेरे को मस्जिद नाम दे दिये हैं । और हिन्दू उसी घेरे को मन्दिर कहते हैं । खुदा और भगवान एक हैं । जो हिन्दू मुसलमान दोनों का हृदय चलाते हैं । एक ही खुदा या भगवान की हम सन्तानें हैं । जैसे- एक ही माँ के उदर से जन्म लेने वाले चार बेटे अलग-अलग रंग, रुप, आकार, प्रकार, आचार-विचार, अच्छे-बुरे, लायक-नालायक होते हैं । उनके नाम और गुण अलग होते हैं । उसी प्रकार से सारी मानव सृष्टि एक खुदा या भगवान या किसी अज्ञात शक्ति की दी हुई सन्तानें हैं । सबका खून एक हैं । तो यह भेद कैसा ?"[२१]

कहानी की महत्त्वपूर्ण विशेषता समाज के उन ठेकेदारों को धिक्कारना हैं, जो जाति और धर्म के आधार पर इंसान को बाँटते हैं । समाज के क्षुद्र से क्षुद्र समझे जाने वाले फुटपाथियों, भिखारियों पर भी उन्होंने बड़ी सदाशयता से लिखा हैं । 'तालाब की मछलियाँ' कहानी में गाँव में खानजादों के लडके आकर सीटियाँ बजाते हैं । ये लोग चोरी, डकैती, मारपीट, गाली सब तरह से हम लोगों को तंग किये हैं । तो दूसरी और 'इस्तीफा' कहानी में जमीदारों का आतंक झेलते किसानों की वेदना का वर्णन किया हैं । किसान कहते हैं कि – "महाराज बाप-दादा आप सबकी हरी-बेगारी करते चल बसे । मेरी भी उमर चाकरी करते बीत रही हैं । देश आजाद हुआ । हम अभी तक गुलाम बने हैं । अब नहीं सहा जाता । दो-चार बाल-बच्चे हैं । थोड़ा बचा-कुचा खेत इस्तीफा दे देंगे तो हमारे बच्चे खायेगें क्या ।"[२२]

नारकीय जीवन जीते हुए भी पात्रों के भीतर उपजें यहीं मानवीय मूल्य करुणा और संवेदनशीलता यादव जी की कहानियों को स्मरणीय बना देते हैं । तो वहीं पर आम-आदमी की धारणा के विपरीत अभाव, अनपढ़, असभ्य और अशिष्ट समझे जाने वाले व्यक्तियों की संवेदनशीलता की दृष्टि से 'दहशत का हथौड़ा' उल्लेखनीय हैं ।

शिवचन कहते हैं कि – "सेठजी धरम कैसे भ्रष्ट होता हैं । उसे तो आप ही जानें । मैं तो बस इतना जानता हूँ कि कर्तव्यनिष्ठा और कार्य के प्रति श्रद्धा और ईमानदारी ही सच्चा धर्म हैं । आदमी के स्पर्श से मिट्टी से सोना उगता हैं । छंगू भी आदमी हैं । वह खेत की जुताई, बुआई, सिंचाई, निराई, कटाई, मंड़ाई करता हैं । अपने सिर पर अनाज खरीद बेचकर तुम व्यापार करते हो, सेठ कहलाते हो । फिर इस पितरी के लोटे, जिसे

माँज-धोकर साफ कर सकते हैं तो छूने से कौन-सा धरम भ्रष्ट हो गया । सत्य ज्ञान होते ही आदमी पाखंड़ का जामा उतार देता हैं ।"[२३]

यादवजी ने सामान्यजन के अशिक्षित एवं कम पढ़े-लिखे होने का मुख्य कारण उनमें शिक्षा के प्रति जागरुक्ता का अभाव गरीबी तथा अधिक सन्तान माना हैं । पूँजी पति वर्ग इसका लाभ उठाता हैं । कथाकार ने सामान्यजन को शिक्षित होने के लिए प्रेरित किया हैं । ताकि वे समाज में अपना खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त कर सके। 'अपने आदमी'कहानी का ढ़ाहे काका सवर्गों के अत्याचार से मुक्त होने के लिए चिंतित हैं । ढ़ाहे काका पिछले कई वर्षो से यही सोचते आ रहे थे, इस चाकरी परम्परा का उच्छेदन कैसे होगा । जिसमें बिरादरी का हर व्यक्ति ठाकुर-ब्राह्मणों की गालियाँ तक सहने को मजबूर हैं । यहाँ तक कि उनकी बहू-बेटियों पर आँख-अँगुली उठाते भी ऊँची जाँति के लोग हिचकते नहीं थे । और अपनी आर्थिक विवशताओं से दबे हुए शिल्पकार लोग कंठ खोलकर विरोध तक नहीं कर पाते थे । 'इस्तीफा' कहानी का नायक यहाँ तक समझने लगा कि चाकर परम्परा यदि इस तरह चलती रही तो उसकी जाति का विकास नहीं हो सकता । उन्हें अपना विकास करने के लिए इस परम्परा को तोड़ना होगा । उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनना होगा । इसके लिए शिक्षित होना अनिवार्य हैं ।

(४) राजनीति की निर्ममता :

राजनीति की कुरुपता का दर्शन वांचक को यादव जी की 'सिंह के बेटे उर्फ इन्टरव्यू एक नाटक', 'चूहे बने साँप', 'चरण स्पर्श', 'ठनगन', 'भीड़' जैसी कहानियों में देखने को मिलता हैं । 'सिंह के बेटे उर्फ इन्टरव्यू एक नाटक कहानी में यादव जी इन्टरव्यू व्यवस्था पर दुस्साहसी ढ़ंग से अँगुली उठाई हैं । इनमें एक और ऐसे व्यक्ति हैं । जिनकी समाज में साख हैं । किन्तु अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर डालना उनके बाये हाथ का खेल हैं । दूसरी और आम जनता और सामान्यजन हैं जो व्यवस्था से जूझ रहे हैं। इनका साथ देने वाला आम व्यक्ति इनके गुनाहों की सजा भोगते हुए इनकी वास्तविक्ता से परिचित होकर कहता हैं कि "जी मैं जंगली समाज और विशिष्ट जंगली जातियों पर शोध-कार्य कर रहा हूँ । इस रिक्त स्थान के लिए मैं दो बार इन्टरव्यू दे चुका हूँ । मुझे आशा हैं। इस बार इन्टरव्यू एक नाटक नहीं बनेगा और मेरा सिलेक्सन हो जायेगा ।"[२४]

'चूहे बने साँप' कहानी में लेखक ने बताया हैं कि किस तरह नायिका की भाभी को चूहे ने काटा उसके काटने से उसकी मृत्यु कैसे हो सकती हैं । इस बात को बताने के लिए मोहन काका यही बताते है कि –

"बाबा अंगुली में मूंस काठ लिया उसके बाद भाभी बोल नहीं सकी । यह सच हैं कि उनको साँप ने नहीं काटा था ।"[२५]

राजनीति इतनी निर्मम हैं कि वह मनुष्य को हैवान बना देती हैं । वह अपना विवेकमान तथा संवेदनाएँ सब कुछ भूल बैठता हैं । सत्तापद के लिए मदान्ध बने लोग निर्दोष एवं भोली-भाली जनता को धर्म के नाम पर बहकाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं । तभी तो 'चरण-स्पर्श' कहानी की नायिका कालिन्दी कहती हैं कि "पंड़ित जी रोज माइक से चिल्लाते हैं माता को देवता मानना चाहिए । पिता को देवता मानना चाहिए । लेकिन वह ब्राह्मण अपनी माँ के साथ क्या सलूक करता हैं । अरे ऐसे ओर्डर करता हैं । कि जैसे वह उसकी माँ नहीं उसकी नौकरानी हो । दूसरों को माता-पिता के पैर छूने के आदेश देता है और खुद अपनी जनेता को बुढ़िया कहकर पुकारता हैं ।"[२६]

काठ की बनी कठोर कुर्सी पर बैठने के बाद कोमल हृदय वाले व्यक्ति का हृदय भी काठ की भाँति कठोर सा हो जाता हैं । इसका स्पष्ट उदाहरण 'ठनगन' कहानी में देखने को मिलता हैं । दूल्हे राजा को परिवार के सारे सदस्य दहेज के रुप में कुछ न कुछ देते हैं फिर भी लाल बक्स दूल्हे राजा खिचड़ी नहीं खाते और परिवार के सभी सदस्य हाथ जोड़कर मनाते हैं । ऐसा करते-करते शाम हो जाती हैं और गाँव में डाकू आकर बाराती को लूटकर चले जाते हैं तभी एक साइकल चालक मुसाफिर कहता हैं कि – "दूल्हे राजा और करो ठनगन । सब लोग तेजी से भागती हुई साइकिल को देखने लगे ।"[२७] ऐसे कठोर हृदय के लोग कुर्सी पर बैठने के बाद आम जनता की कोई परवाह नहीं करते बल्कि उनका तो कथन है कि आदमी देव-दरबार और राज-दरबार दोनों जगह एक ही गरज से जाता हैं, मगर फिजाँ अलग-अलग होती हैं ।

(५) आर्थिक समस्याओं से जूझते पात्र :

स्वातंत्रयोत्तर साहित्यकारों में यादव जी ऐसे विशिष्ट साहित्यकार हैं जिन्होंने अध्यापन एवं लेखक को ही जीविकोपार्जन का साधन बनाया हैं । मात्र मसिजीवी होने के कारण भी अभाव ग्रस्त जीवन जीते हुए आर्थिक विषमताओं से गुजरे हैं । उनका साहित्य प्रेक्षक का नहीं भोक्ता का हैं । उन्होंने सहानुभूति के आधार पर नहीं स्वानृभूति के आधार पर साहित्य रचा हैं । फलस्वरुप उनकी कहानियों के पात्र भी अभावग्रस्त जीवन जीते और आर्थिक विषमताओं से जूझते नजर आते हैं ।

रोटी, कपड़ा और मकान व्यक्ति की प्राथमिक और स्वाभाविक आवश्यक्ताएँ है, मगर यादवजी और उनके पात्र इनके लिए भी संघर्षरत रहे हैं । उनकी कहानियों के कई पात्र

रोटी जुटाने के लिए तन का सौदा करने को विवश हैं । गरीबी ऐसा अभिशाप हैं । जिसमें भाई-बहन के पवित्र प्रेम और माँ की ममता का कोई मूल्य प्रतीत नहीं होता । पेट की क्षुधा के सामने सब रिश्ते-नाते ताक में रख दिये जाते हैं । इनकी कहानी रोटी के लिए जिस्म बेचती नारियाँ, बेघर पति-पत्नियों, लावारिसों और भिखमंगो के जीवन का दैनीय यथार्थ नग्नरूप में खोलकर हमारे सामने रख देती हैं । एक उदाहरण-'झोपड़ी का झरोखा' कहानी से दृष्टव्य हैं ।

"चोप्प हरामजादी..... झोपड़ी वालियां ऐसे ही नखड़े करती हैं, मैं जानता हूँ, सीधी अंगुली से घी नहीं निकलता । उस शराबी को धक्के मारकर निकाल दिया, और यह पैसे वाला बाबू तेरा पति बनकर अन्दर बैठा हैं । तू किसी की बीबी नहीं हैं । तेरा धन्धा मेरे डंडे पर चलता हैं । अभी दो डंडे चूतर पर पड़ेगे..... । निकाल रुपये, नहीं तो तेरी झुग्गी उजड़वाकर तुझे अन्दर करवा दूँगा । साली झूठ बोलती हैं । मुझे मालूम हैं इन झोंपड़ियों में क्या होता हैं । देती हैं या डंडे मारकर अन्दर करुँ ।"[२८]

ये लावारिस जिन्दगानियों के लिए कब्र और सेज दोनों का काम दे रहे हैं । भिखमंगो का बुढ़ापा इनके अन्दर आखिरी करवट बदलता हैं, तो गैर जिम्मेदारी की सौगातें भी यहाँ पहली किलकारी भरती हैं । वो औलादें, जिनकी अमिय पयोधाराओं ने एलेक्जेंडा में साढ़े दस आने का लास्ट शो सिनेमा, सात आने की आधा प्लेट बिरयानी और डेढ़ रुपये की ग्रांड रोड से खरीदकर दी हुई रेशमी-चोली के बदल में नौ-नौ, दस-दस महीने खून और आँसुओं से सींचा हैं । मानव जीवन का यह कटु यथार्थ शायद ही किसी और लेखक ने कहानी के माध्यम से इतनी तीव्रता के साथ उजागर किया हो, जो मनुष्य की संवेदना को पूरी तरह से झकझोर डालता हैं ।

यादवजी की कहानियों के कई पात्र रोटी की तलाश में यत्र-तत्र भटकते और अपराध करते नजर आते हैं । रोटी के बाद वस्त्र की आवश्यक्ता होती हैं । 'झोंपड़ी का झरोखा' कहानी इन्हीं भिखमंगो लोगों की मानसिकता का चित्रण करती हैं जो आवासहीन परिवार और लावारिस सड़क के किनारे पडे बड़े-बड़े पाइपों में आसरा खोजतें हैं । तो कभी जानबूझकर जेल की सलाखों के पीछे चले जाते हैं ।

वर्तमान युग भौतिक वादी युग हैं । इसमें धन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया जा रहा हैं । पारस्परिक सम्बन्ध भी धन से आँके जाने लगे हैं । रिश्तों का आधार धन के कारण निर्धन रिश्तेदारों को उपेक्षित किया जाने लगा हैं । 'फाटक खुलने के इन्तजार' में कहानी नौकरी की तलाश में वतन छोड़कर दर-दर भटकते नवजवानों की कहानी हैं।

इसमें जाति, धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण नैतिकता अनैतिकता आदि से सम्बृद्ध सामाजिक विड़म्बनाओं को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में उठाया गया हैं । इस कहानी की कथा का केन्द्र बिन्दु रोजी-रोटी की तलाश में वतन छोड़कर शहरों में भटकते नवजवानों की दास्तान हैं जो शहर में चाली या खोली में एक से अधिक लोग रहते हैं और संडास जाने के लिए भी कतार में खड़े रहते हैं तथा फाटक खुलने का इन्तजार करते हैं । और अन्त में वे लोग महसूस करते हैं कि अपना गाँव छोड़कर शहर में आने पर अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता हैं । ये सभी पात्र आर्थिक समस्याओं से जूझते नजर आते हैं।

आज के भौतिकवादी जीवन की सबसे बडी कमजोरी व्यक्ति की संवेदन शून्यता हैं । 'फाटक खुलने के इन्तजार में' कहानी इसका जीवन्त उदाहरण हैं । इसमें महानगर की यांत्रिक कुरुपताओं के साथ सामान्य मानव की संवेदनशून्यता को उभारा हैं लछमियां कहती हैं कि –

"मुझे रंडी बनाने लाया था । वह बोला-तू तो रंडी बनकर गाँव से ही आई थी। मैं गुस्सा हो गई-हुँह हाड मेरा टूटे पैसे तू जमा करे । यह धंधा मुझसे नही होगा ।"[२९]

यादवजी ने कई कहानियों में यह सच्चाई उभारी हैं कि अभावों और समाज के दुर्व्यवहार के कारण व्यक्ति अपराधी बन जाते हैं, किन्तु अपराध उनके संस्कारों में नहीं होता । उन्हें अपराधी बनाने में समाज की अहम भूमिका होती हैं । यह कटु यथार्थ 'झोंपड़ी का झरोखा' फाटक खुलने के इन्तजार में आदि कहानियों में सामने आती हैं ।

यादवजी ने जो जिया उसे साहित्य में उतारा । उन्होंने लेखकीय स्वतन्त्रता, गरिमा और स्वाभाविकता को बरकरार रखने का प्रयत्न किया । वह आजीवन लेखक के रूप में जीने का प्रयास करते हुए आर्थिक संघर्षो से जूझते रहे । यही सूझ उनके पात्रों में भी दिखाई देती हैं । फिर भी उनमें स्वाभिमान हैं, मानवीयता हैं एवं नैतिक मूल्य हैं। मानवीय उदारता में भी यही विश्वास यादवजी की अपनी विशेषता हैं ।

यादव जी का जीवन-दर्शन :

किसी भी व्यक्ति का जीवन दर्शन उसके जीवनगत अनुभवों तथा उसकी परिवेशगत स्थितियों से निर्मित होता हैं । यादव जी का जीवन अनेक प्रकार की विषमताओं से युक्त रहा हैं । किसी प्रकार वे अनेक कठिनाईयों के बीच इण्टरमीडियट पास करने के बाद गुजरात चले गये । वहाँ लगभग कई वर्षों तक प्रिन्टींग प्रेस में कार्य करते रहे । गुजरात से लौटने के बाद उनका जीवन आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत सुरक्षात्मक हो गया था । लेकिन जीवन में अपने आदर्शो के अनुरूप हो जाने की बाध्यता के कारण उन्होंने कभी आदर्शो के प्रतिकूल समझौता नहीं किया । 'जहाँ देने की अपेक्षा पाया' के आवरण पृष्ट पर सूर्यदीन यादव स्वयं लिखते हैं कि –

"मैं जीवन की विपरीत परिस्थितियों में अर्थात् पानी के तेज धारा प्रवाह में मछली की तरह उल्टा तैरकर समुद्र की अथाह गहराई में पहुँचकर मानों चौदह रत्नों को प्राप्त करने के लिए बार-बार साहित्यिक संघर्ष नहीं, मानों समुद्र मंथन करता हूँ । हिमालय हैं हमारा क्षणभंगुर देह, शेषनाग रस्सी हैं, हवा और एक तरफ राक्षस (अमानवीय तत्व) रस्से को खींच रहे हैं, दूसरी तरफ देवता (मानवीय तत्व) रस्सी को खींच रहे हैं । मेरे रचनाकार का जीवन जल मथा जा रहा हैं – कोरे कागज पर - देखना हैं कि जीवन नहीं, इस समुद्र मंथन से अमृत के साथ क्या-क्या निकलता हैं । डर लगता हैं कहीं फिर विष न निकल आये । नहीं तो भोलेनाथ के दर्शन दुर्लभ हैं । यह साधारण भोलानाथ (मैं) विष को हलक के नीचे कैसे उतार पायेगा । अतः यहाँ यही प्रयत्न रहा हैं किस इस क्षण भंगुर जीवन मंथन से मात्र अमृत ही निकले और सारा जहाँ अमृतमय हो जाये । उस साहित्यामृत का एक बूँद आपकी भी हलक में पड जाये और आप देवता से महादेवता सामान्य से महामानव बन जाये – तभी मेरा प्रयत्न एवं जीवन सार्थक माना जायेगा ।"[३०]

उपरोक्त उदाहरणों से भी यह तथ्य स्पष्ट हो जाता हैं कि उनका सम्पूर्ण जीवन अपने आदर्शो के अनुरूप जी पाने की यंत्रणाओ से युक्त हैं । जीवन की विषम से विषम परिस्थितियों के बीच भी एक अच्छा मनुष्य बन सकने का संघर्ष उन्होंने चुना हैं । इसीलिए ताकि वे अपने व्यवहार और चिन्तन के अन्तर को पाट सकें । वे एक ऐसे समाज के पक्षपाती हैं, जहाँ पर मानवीय कमियाँ और सीमाएँ तो हो सकती हैं लेकिन जहाँ मनुष्य की उदारता और श्रेष्ठता का सम्मान हो और मनुष्य में मनुष्य की पहचान हो । इस सन्दर्भ में यादव जी ने स्वयं लिखा हैं –

"साहित्य क्षेत्र में जितनी उठा-पटक होती हैं । उतनी अन्य किसी क्षेत्र में नहीं होती हैं । साहित्य क्षेत्र कोई अखाड़ा नहीं कि वहाँ कुश्ती लडी जाये । कुछ तेज तर्रार आलोचक विशेषकर नवोदित रचनाकारों की रचनाओं की टीका टिप्पणी करके उन्हें हताश करना चाहते हैं । दरअसल होना यह चाहिए कि त्रुटियों के प्रति सहज संकेत करते हुए अच्छे सुझावों के द्वारा समझाना चाहिए ।"[३१] लेखन व्यवस्था के स्तर पर यादव जी सहभागिता की भावना को महत्त्व देते हैं। इसीलिए रचनाकार सभी वस्तुओं से प्रेरणा लेता हैं । इसीलिए उन्होंने लिखा हैं कि–

"मात्र मनुष्य से ही नहीं, पशु, पक्षियों एवं सारी प्रकृति से हमें प्रेरणा मिलती रहती हैं । खेत, खलिहाल, जीव-जन्तु, माटी, ऋतु, दिन-रात, सूर्य, चंद्र, शीत ऐसे प्रकृतिस्थ रूप परिवेश से रचना प्रक्रिया में काफी मदद मिलती हैं । दरअसल उन्हीं जीवन्त तत्वों के बीच रहकर मैं कुछ लिख पाता हूँ । ब्राह्य दृष्टि से देखने और अन्त दृष्टि से महसूस करने के बाद उस प्राकृतिक परिवेश का जीवन्त चित्रण हो पाता हैं ।"[३२]

किसी कथाकार को अपने जीवन के अनुभवों पर आधारित जो अनुभव प्राप्त होता हैं । वही उसका निज का जीवन-दर्शन बन जाया करता हैं । यादव जी ने भी साधारण स्थिति के निम्न मध्यमवर्गीय परिवार से उठकर इतनी लम्बी अवधि में जो जीवन-संघर्ष झेला हैं और संसार के विविध अनुभवों और व्यक्तियों द्वारा जो कुछ जीवन-सत्य प्राप्त किया हैं । उसे उन्होंने अपनी कहानियों में यत्र-तत्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं । यादव जी के जीवन-दर्शन से पूर्णतः अवगत होने से पूर्व उनकी जीवन विषयक कल्पना को जान लेना इस स्थल पर समीचीत होगा । यादव जी जीवन को उसके समग्र रूप में देखने के आदी हैं और काफी दूर तक वे आस्थावादी कथाकार हैं । मनुष्य के बारे में उनकी मान्यता हैं कि.....

"आदमी अगर देशद्रोही हो तो देश निकाल कर सकते हैं पर जो रक्तद्रोही हो तो इसका क्या करें ।"[३३]

यहाँ पर यादवजी ने राजनीतिज्ञ लोगों का जीवन दर्शन प्रस्तुत किया हैं जो जीवन को मात्र भौतिक धरातल पर नहीं जीता क्योंकि भौतिक धरातल पर तो जीवन पशु भी निर्वाह करता हैं । मनुष्य ो स्वच्छ वायु मंडल में विचरण करने वाला सर्वोत्तम जीव हैं । उसकी प्रकृति सदा गतिशील और संसार की तरह ही परिवर्तनशील रही हैं ।

यादवजी का कथा साहित्य पढ़ने से ज्ञात होता हैं कि इन्होंने नारी की दयनीय स्थिति पर सशक्त रूप से लेखनी चलायी हैं और उसकी दयनीय स्थिति का मुख्य कारण

आर्थिक वैषम्य माना हैं । अतः जीवन को स्वतन्त्र बनाने के लिए आत्म निर्भरता पर जोर देते हैं

जीवन में स्वतन्त्र वही हैं जो आत्मनिर्भर हैं । सबसे बडी आत्मनिर्भरता तो आर्थिक निर्भरता हैं । समाज और समाज में निहित आम आदमी के जीवन सामाजिक प्रश्नों पर विचार करते हुए कहते हैं –

"सूर्यदीन जी के हृदय में जन-जन के हेतु अटूट प्यार हैं । उनकी आकांक्षा हैं कि संसार में मानव होने के नाते मानव को सत्कर्म और परोपकार करना ही उचित हैं। धृणा और द्वेष नहीं ।"[३४] श्रीमती कांति अय्यर यादवजी के जीवन-दर्शन के बारे में लिखती हैं कि –

"यादवजी उन विरले भारतीय रचनाकारों में से है, जिन्हें जल्दी से किसी वर्ग या श्रेणी में रखना संभव नहीं हैं । भाषा की ग्राम्य पृष्ठ भूमि का अंतर्रिमक शब्दावली का प्रयोग लोग व्यवहार, राष्ट्रप्रेम, रज के कण-कण से संवादित साधन यादव जी की ही क्षमता हैं ।"[३५]

अतः यादव जी की कहानियों में आदमी ही सर्वोपरि हैं । यहाँ जाति, वर्ण और धर्म गौण हो जाते हैं । उनके यहाँ सामान्यजन, मुस्लिम, पिछड़े, उपेक्षित, आर्थिक विहीनता से ग्रस्त चरित्रों की भरमार हैं ।

यादवजी ने सामान्यजन के अशिक्षित एवं कम पढ़े-लिखे होने का मुख्य कारण उनमें शिक्षा के प्रति जागरुक्ता का अभाव, गरीबी तथा अधिक सन्तान माना हैं । कथाकार ने सामान्यजन को शिक्षित होने के लिए प्रेरित किया हैं । ताकि समाज में खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त कर सकें । सामान्यजन को धर्म और शास्त्र की दुहाई देकर उन्हें सताया गया हैं, शिक्षा से वंचित करके उनका मस्तिष्क कुन्द कर दिया गया हैं ।

ऊँचे धरातल पर जीने वाला या सुविधा सम्पन्न व्यक्ति ही बड़ा आदमी नहीं हो सकता। बड़ा आदमी कोई व्यक्ति तब तक नहीं हो सकता जब तक उसके अन्दर समाज कल्याण और सदाचार की भावना न हो, यह लेखक का अपना निजी जीवन सिद्धान्त हैं।

गाँव की निम्न जाति की महिलाओं का उच्च जाति के समाज के ठेकेदारों के द्वारा शारीरिक शोषण से तंग आकर या तो फिर शहर के फुटपाथों, झोपडी वासी के जीवन पर अपनी कलम चलायी हैं । समाज के क्षुद्र समझे जाने वाले फुटपाथियों, भिखारियों और अपराधियों पर भी उन्होंने बड़ी सदाशयता से लिखा हैं ।

हमारी संस्कृति में संकीर्णता का जो दोष आया वह संकीर्णता भी धर्म बन गयी। शूद्रों और स्त्रियों को समान अधिकारों से वंचित रखना, मानव को निकृष्ट पशुओं से भी बदतर, कुत्ते-बिल्लियों से भी कहीं हैं, या स्पर्श योग्य भी न मानना । ऐसे अस्पृश्यों की यदि छाया भी पड़ जाय तो स्नान का विधान, यदि कभी कोई हमारे र्म को छोड़कर अन्य किसी धर्म का ग्रहण कर लें । और वह वापस हमारे धर्म में आना चाहे तो उसे वापस आनें का अधिकार न रहना संकीर्णता की यह पराकाष्ठा हैं । यादव जी जन्म के आधार पर बनी वर्ण व्यवस्था के विरोधी हैं । व्यक्ति का मान-सम्मान और प्रतिष्ठा उसकी जाति और स्थिति से आँकी जाती हैं । जाति और स्थिति बदलने पर व्यक्ति के मान-सम्मान और प्रतिष्ठा में भी अन्तर आ जाता हैं । नारी के प्रति यादव जी का दृष्टिकोण उदारवादी हैं । वे उसका अस्तित्व केवल पुरुष को वासना पूर्ति का साधन बनने में ही नहीं मानते ..... उनकी दृष्टि में वह हर क्षेत्र में पुरुष के समकक्ष पहुँचने में समर्थ हैं। यादव जी के साहित्य में दो-चार नारी-पात्र ही पतित दिखाई देंगे । वे नारी जागरण को अभिशाप न मानकर वरदान मानते हैं । यादव जी इस तथ्य को यों कहते हैं –

"आज नारी घर की चार-दीवारी से बाहर अर्थोपार्जन के लिए नौकरी पेशे में व्यस्त हैं । सबेरे से लेकर शाम तक घर से बाहर नौकरी की चिन्ता ज्यादा करती हैं ।"[३६]

पुरुष अपनी आर्थिक स्थिति में कितना ही दीनहीन हो, स्त्री के सामने अपने पराक्रमी रूप को ही दिखाना चाहता हैं, उसके अन्दर पुरुष होने का अहंकार हैं, तो अपने जातीय गुणों का दंभ भी हैं । वह अपनी पहचान उन्हीं में बनाये रखना चाहता हैं ।

स्त्री समझती हैं कि उसका काम केवल पत्नी और माता के काम को पूरा कर देना हैं । पर इतना ही नहीं, उसका काम अपनी जाविका उपार्जन करना भी हैं । उसका काम समाज में अपना स्वतंत्र स्थान बनाना भी हैं ।

प्रकृति जिसकी और लोगों का ध्यान हीं नहीं हैं जिसकी सुन्दरता को नंगी आँखो से देखने का रस ही भूलते जा रहे हैं । और यादवजी मसिहाई अंदाज में हमे उधर ही ले जाते हैं –

"छोटे बड़े सभी पेड़ एक ही बगिया के पेड़ होते हैं । सबके उत्तरदायित्व होते हैं, कार्य होते हैं । रचनाकार की हैरानी पाठको को हैरान कर सकती हैं । रचनाकार स्वयं एक पेड़ होता हैं । छोटे-बड़े सभी पेड़ो को एक ही बगिया के पेड़ समझकर उनसे अटूट रूप से जुड़े रहना रचनाकार की बुद्धिमत्ता होती हैं । वह मानवीय सम्बन्धो को वृक्षो वनस्पतियों से अटूट रूप से जुड़ा हुआ पाता हैं ।"[३७]

यादव जी इस प्रकृति का भी दर्शन करा देते हैं । ठीक स्त्री ही की तरह । यादव जी की कहानियों में कर्तव्य, त्याग, सेवा, नैतिकता, ईमानदारी, उदारता, आशावादिता, आदर्श के प्रति निष्ठा आदि अनेक मानवतावादी तत्वों की अभिव्यक्ति हुई हैं । मनुष्य सूर्य से भी अधिक प्रकाशवन्त और अभारात्रि से भी अधिक काला हो सकता हैं । फिर शब्दों का मूल्य नहीं, मूल्य हैं जीवन किस प्रकार चल रहा हैं, उसका । हर मानव को प्रकाश वंश रहने का ही प्रयत्न करना चाहिए और अपने आपको आकाश सदृश ही विस्तीर्ण रखना चाहिए... आशावादिता में ही सच्चा जीवन हैं, आशा के अभाव में आज के साथ ही आगामी कल का भी विनाश हो जाता हैं ।

प्रयागसिंह चौहान यादव जी के जीवन दर्शन के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि "उनकी रचनाएँ मानव जीवन से जुड़ी होती हैं । वे महानगर में रहते हुए भी गाँव की माटी को विस्मृत नहीं कर पाते हैं । उन्हें माटी के रचनाकार कहें । तो अतिशयोक्ति नहीं होगा ।"[३८]

तो दूसरी और चन्द्र मौलेश्वर प्रसाद यादवजी की रचनाओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि –

"किसी भी रचनाकार को कहीं से भी प्रेरणा मिलती हैं, तो उसके हृदय से रचना स्फुटित होती हैं और कलम के माध्यम से कागज पर उतरती हैं । डॉ. सूर्यदीन यादव एक ऐसे कवि हैं जो यह मानते हैं कि प्रेरणा दी नहीं जाती, बल्कि ले ली जाती हैं।"[३९]

कवि का नाता कागज से इस प्रकार जुड़ा होता हैं कि घूम फिर कर कागज कवि के पास ही आ जाता हैं । कागज टुकड़े - टुकड़े होने के बाद भी पुर्नजन्म लेकर पुनः रचनाकार के पास आ जाता हैं । इस प्रकार से यादव जी हंमेशा अपनी लेखनी चलाते रहे हैं । उनकी लेखनी को देखकर डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय-यादव जी के बारे में लिखते हैं कि –

"डॉ. सूर्यदीन यादव हिन्दी साहित्य के जाने-माने साहित्यकार हैं । उन्होंने हिन्दी साहित्य को जो योगदान दिया उसे इतिहास कभी विस्तृत नहीं कर पाएगा ।"[४०]

यादव जी ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने जीवन के हर पहलू पर अपनी लेखनी चलायी हैं । परिवार को लेकर लोगो की संकुचित विचार धारा के बारे में वे लिखते हैं कि –

"इसमें दो राय नहीं हैं कि जिस दौर में हम जी रहे हैं उसमें परिवार, कुटुम्ब आदि की परिभाषाएँ बदल गई हैं । आज के परिवार में पति पत्नी और बच्चे ही आते हैं । माता-पिता का कोई स्थान नहीं हैं ।"[४१]

डॉ. यादव धीर-गम्भीर व्यक्तित्व के धनी हैं, उदारमना हैं । वे जब लिखने बैठते हैं तब मोह माया के बन्धनों से मुक्त होकर सिर्फ उन समस्याओं से जुड़ जाते हैं जो उनकी रचना के केन्द्र में रहती हैं ।

आज समाज संक्रमण काल से गुजर रहा हैं । एक और परम्परा हैं, तो दूसरी और नई संस्कृति के प्रति आकर्षण महानगरीय सभ्यता की ओर खींच रहा हैं । इस बात को लेखक ने आलोच्य कृति के माध्यम से साहित्य के सभी पाठकों के समक्ष सहजता से परिभाषित किया हैं ।

डॉ. जगदीप यादव इनके बारे में लिखते हैं कि –

"डॉ. यादवजी एक समर्थ लेखक हैं । विषय पर उनकी पकड़ इस बात का प्रमाण हैं । उन्होंने जिन्दगी की डगर के अनुभव को आत्मबोध की भट्टी में तरासा हैं । यह अनुभव रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़ी कृतियों की विशिष्ट कविताओं की मनोवैज्ञानिक पकड़ के साथ सर्जनात्मक प्रयास के रुप में उभरकर सामने आया हैं ।"[४२]

यादवजी के जीवन दर्शन के बारे में ईश्वर सिंह चौहान लिखते हैं कि, " उनके लेखन में सदा ताजगी का अनुभव होता हैं । जिन्दगी के छोटे - छोटे अनुभवों को एक साँचे में डालकर वे एक रचना का स्वरुप प्रदान करते हैं । जिस प्रकार से एक कुशल रचनाकार एक सफल चित्रकार की भाँति कार्य करता है, और अपनी कला के माध्यम से सामान्य दृश्यों को नवीन रंगो से आपूरित करके जीवन्त बना देता हैं, ठीक उसी प्रकार कथाकार डॉ. सूर्यदीन यादव जिन्दगी की सामान्य से सामान्य घटनाओं, उपघटनाओं को अपने सरल शब्दों में बाँधकर एक नयी रचना का रुप प्रदान कर पाठको के सामने प्रस्तुत करते हैं ।"[४३]

शिल्प के विशिष्ट आयाम :

किसी भी साहित्यिक कृति का महत्त्वपूर्ण घटक होता हैं । उसका शिल्प विधान। शिल्प विधान विधि शब्द से सामान्यतः वस्तु के रचने अथवा गढ़ने की प्रक्रिया का अर्थ लिया जाता हैं ।

"किसी वस्तु के रचने की जो-जो विधियाँ अथवा प्रक्रियाएँ होती हैं, उनके समुच्चय को शिल्प विधान के नाम से पुकारा जाता हैं ।"[४४]

इस अर्थ के आधार पर कहानी शिल्प विधि का अभिप्राय हो जाता है, कहानी की रचना में प्रयुक्त होने वाली विविध रीतियों, शैलियों और विधियों की योजना । कहानी में मानव चरित्र के विविध पहलुओ को उद्‌घाटित करना प्रायः कहानीकार का लक्ष्य होता हैं और इस लक्ष्य की सिद्धि हेतु के लिए वह विविध घटनाओं और चरित्रों की योजना करता हैढा कहानीकार अपनी रुचि अपने दृष्टिकोण एवं अपने समय की जरुरतों के अनुसार विषय का चयन करता हैं । और एक बार विषय पर चयन हो जाने के बाद उसका कथ्य अपने अनुकूल शिल्प और शैली का निर्धारण स्वयं कर लेता हैं । चूँकि कहानी में शिल्प विधि का सम्बन्ध अभिव्यक्ति के एक विशेष तक सीमित होता है, और वह व्यक्ति सापेक्ष होती हैं ।

"शैली व्यक्ति परक होती हैं, शिल्प वस्तु परक ।"[४५]

कहानी की शिल्प विधि को कहानी का कथ्य कहानीकार की प्रतिभा उसकी अभिरुचि और युग की माँग कुछ ऐसे घटक हैं जो कहानी की शिल्प विधि को प्रभावित , परिवर्तित करते रहते हैं ।

परिवर्तन और विकास की एक निरन्तर प्रक्रिया हिन्दी कहानी शिल्प में दिखाई देती है, कहानी शिल्प की दृष्टि से यादव जी की कहानी प्रयोगात्मक कही जा सकती हैं । इस प्रयोगशीलता के मूल में प्रायः क्रियाशील रहता हैं । उनका निजी दृष्टिकोण जो उनके सम्पूर्ण रचना-विधान को प्रेरित करता हैं । व्यक्ति की आन्तरिक वृत्तियों और अन्तर्द्वन्दों को उभारकर स्वस्थ और सर्जनात्मक व्यक्तित्व की प्रस्थापना केन्द्रिय महत्त्व देने के कारण यादव जी का दृष्टिकोण आन्तरिक विश्लेषण परक, यादव का उद्देश्य सामाजिक, आँचलिक, राजनैतिक समस्याओं का चित्रण करना हैं ।

कहानी की कथावस्तु को सुगठित और सुश्रृंखलित बनाने के लिए कहानीकार तकनीकों और शैलियों का प्रयोग करता हैं उन्हीं का विश्लेषण वस्तु शिल्प के अंतर्गत किया जाता

हैं । यादव जी की कहानियों का केन्द्रबिन्दु स्त्री-पुरुष सम्बन्ध सामाजिक समस्या, आँचलिक समस्या, सामान्य जीवन, सम्बन्धी समस्या अहम रहा हैं । इसलिए इनकी कहानियों में घटना-बहुलता के स्थान पर पात्रों की आन्तरिक वृत्तियों, आत्ममथन, आत्मप्रवचन, द्वन्द्व, मानसिक खिचाव को विशेष महत्त्व दिया हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथाकारों में सूर्यदीन यादव जी का नाम (गुजरात के) उन अग्रणी कथाकारों में लिया जाता हैं । जिन्होंने हिन्दी साहित्य को प्रेमचन्दोत्तर युगीन मनोविश्लेषणात्मक कथा साहित्य परम्परा से आगे बढ़कर रचनात्मक आयाम प्रदान किये । वे आँचलिक कथाकारों में तो सर्वश्रेष्ठ हैं । शिल्प की दृष्टि से सम्पूर्ण हिन्दी कथा साहित्य में निस्संदेह यादव जी का कोई सानी नहीं । उनमें जहाँ एक और प्रेमचन्द्र की-सी विशद कथा भूमि हैं वहीं दूसरी और सरदार पूर्णसिंह की भाँति भाषा का अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य एवं प्रवाह हैं और तीसरी ओर पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और प्रसाद की तरह बात कहने की एक पृथक शैली हैं । विशेष रुप से स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में आँचलिकता के साथ-साथ गहन मानवीय मूल्यों का एक सटीक एवं स्वाभाविक सामंजस्य जो यादव जी के कथा साहित्य में दिखाई पड़ता हैं । वह अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ता । सूर्यदीन वास्तव में सूर्य+दीन हैं। अपनी शिल्पगत विशेषताओं के साथ-साथ यादव जी का महत्त्व अपनी रचनात्मक्ता से जुड़ी हुई हैं कथा भूमि की ईमानदार व्यक्तित्व के कारण भी हैं । अपने कथा साहित्य में उन्होंने जहाँ एक ओर अम्बद्ध आँचल का सहज स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया हैं, वहाँ दूसरी ओर युगीन संवेदना को भी सफलता के साथ अभिव्यक्त किया हैं । इस तरह यादवजी की कहानियों का शिल्प विधान अनेकों वैशिष्ट्क से परिपूर्ण हैं ।

सूर्यदीन यादव की भाषा क्षमता :

भाषा साहित्य और जीवन के बीच की कड़ी हैं साहित्यिक कृतियों में साहित्यकार भाषा-कौशल द्वारा अपनी अभिव्यक्ति प्रभावपूर्ण बनाता हैं । एवं अभिप्रेत वस्तु को संप्रेषित करता हैं ।

श्रीमती चेतना राजपूत के शब्दो में कहे तो –

"कहानी की भाषा जीवन की भाषा होती हैं । वह निर्जीव न होकर प्रवाह युक्त होती हैं । साहित्यकार प्रतीकों, संकेतो, बिम्बों, अलंकारो, मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों और शब्द शक्तियों के सटीक प्रयोग से उसे प्रवाह पूर्ण बनाता हैं । तथा सूक्ष्म ये सूक्ष्मतर भावों को बड़े ही कलात्मक ढ़ंग से कहानी में स्थापित कर देता हैं ।"[४६]

सूर्यदीन यादव जी भाषा की दृष्टि से सिद्धहस्त कथाकार हैं । उनकी भाषा क्षमता को दो स्तरों पर देख सकते हैं —

(१) शब्द चयन और भाषा रूप

(२) भाषा का सौन्दर्य पक्ष

(१) शब्द चयन और भाषा रूप :

यादवजी के पात्र निम्न वर्गो के समाज से सम्बन्धित होकर भी किसी एक प्रकार के प्रसंग घटना और स्थान सम्बन्धित नहीं हैं, इसलिए उनकी भाषा में शब्दों का वैविध्य हैं । लेखक ने साहित्यकारों एवं पढ़े लिखे पात्रो से सम्बन्धित कहानियों में आँचलिक तत्सम शब्दो का प्रयोग कर भाषा की पात्रानुकूल बनाने में अपूर्व कौशल दिखलाया हैं। तत्सम शब्दो का प्रयोग कर भाषा को साहित्यिक बना दिया हैं और स्वयं पात्र के व्यक्तित्व के अनुकूल बन गया हैं । अन्य कहानियों से सौम्य, अंतस्थल, अनुरोध, स्नेह , बंधुत्व, प्रतिष्ठा, मर्म स्तब्ध, बहिद्रष्ट, विस्मयान्वित, उत्कंठा, मेधावी, मेधा, नितंभ, स्वर आदि तत्सम शब्दों की लम्बी सूची दी जा सकती हैं । इनसे कहानियाँ बोझिल नहीं हुई बल्कि उनके सौन्दर्य में वृद्धि हुई हैं, जो लेखक की सौन्दर्यात्मक दृष्टि का परिचायक हैं । डॉ. सूर्यदीन यादव की भाषा-शैली के बारे में डॉ. कु. माया शबनम लिखती हैं कि —

"सूर्यदीन जी भाव व्यंजना के सशक्त कवि हैं । उनकी भावाभिव्याक्ति में भाषा कहीं बाधक नहीं बनती । आँचलिक और खड़ी बोली से संयुक्त भाषा जगह-जगह पाठकों को बाधा अवश्य पहुँचाती हैं किन्तु यथार्थ की अंजलि में भावो का उमड़ता सागर बरबस खींचकर उन्हें अपने में डुबो लेता हैं ।"[४७]

तद्‌भव और बोलचाल की भाषा द्वारा कथाकार ने अपने पात्रों के मन की बात सरलता से अभिव्यक्त की हैं और उसमें स्वाभाविक्ता आई हैं । लेखक ने मिठाई, डाक्टर, गरदन, नरम, भूख, हुनर, नोट, आँख आदि तद्‌भव शब्दो का प्रयोग कर पात्रों को जीवत बनाया हैं । तथा 'जन्म' कहानी में डागडर-फागडर शब्दों के प्रयोग से स्वतः सहजता और मधुरता आ गई हैं । तो वहीं पर 'अपने आदमी' कहानी में अब हीं बोखार-सोखार सब उतर जाए । की तौ सीधे चाले के हर नोंध ! जैसे शब्दों का प्रयोग किया हैं ।

लेखक ने सामान्य जन - जीवन के यथार्थ को रुबरु करने के लिए उच्चारण रुपों को महत्त्वपूर्ण साधन बनाया हैं । अतः इनकी कहानियों में शब्दों के विकृत रुप अनायास ही स्थान पा गये हैं । जैसे - 'बच्चे का बाप कौन' कहानी में "छद्‌दर तू भी नामरद

हैं क्या । मुँह में जबान नहीं तेरे ।"[४८] वाक्य में नामरद् जवान तथा 'किसान' कहानी में 'पैर की जूती पैर में ही रहेगी, आदि । विकृत शब्दों का प्रयोग दर्शनीय हैं । इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग लेखक ने पात्रों की आज्ञानता वश ही नहीं बल्कि स्थानीय प्रभाव के कारण ही किया हैं ।

यादवजी का अभीष्ट गाँव के जन-जीवन को हिन्दी साहित्य तक पहुँचाना हैं। वहाँ के जन-जीवन एवं संस्कृति को उभारने के लिए उन्होंने ग्रामीण अँचल से सम्बन्धित क़हानियों में इन्होंने आँचलिक शब्दो का भरपूर उपयोग किया हैं । लेखक के लिए ये शब्द आँचलिक यथार्थ को सुरक्षित रखने का उपाय हैं । जैसे डोंगटर-फागटर, लेरुवा-बछडा, आँधी-बौखा, लौयिचों बनतू, ढ़ोंगी, गंदुभी, बरुवार, लहुरा, हुमासकर, आँवा, पहंटकर, लोटा, कोसा, परई, लुप्प-भाट-पाट गाँवई, मनुवा, कुम्हड़े, तारे-तरैईयों, फरवारे, सुईलार, कोंच, दंताऊज, बमकना, सब्जा, बुलाक, चौगडा, कछना, निराना, लेखू, खिस्वेद, छपछपइया, निकियाने, खलिहाने, रांपी, पहँटे, खलखलाती आदि । आँचलिक शब्दो के प्रयोग से कहानियों में स्थानीय रंगत आयी हैं । और हिन्दी शब्द में भण्ड़ार में वृद्धि हुई हैं ।

यादवजी ने अंग्रेजी, अरबी-फारसी और उर्दू शब्दो का भरपूर प्रयोग किया हैं । अंग्रेजी का ज्ञान न होने पर भी इनके पात्र सुने-सुनाये एवं टूटे-फूटे शब्दों का प्रयोग करते हैं जैसे— वकप, फीस, रडार, रिजर्व, ल्यूना, पेट्रोल, अटेक, शो, अनमेर्चिंग, टोप, लेमन, बाथरुम-लैट्रिन, कुकर, एटमबम, सुपरवाइजर, इन्जेक्शन आदि । उच्चवर्ग द्वारा अंग्रेजी बोलने के कारण इनके पात्रों में अंग्रेजी के प्रति मोह दिखायी देता हैं । ये पात्र अंग्रेजी बोलकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हैं । इन पात्रों की अज्ञानतावश एवं अपने ढंग से मुख-सुख लेते हुए शब्दो का मनोनुकूलन प्रयोग करने के कारण अंग्रेजी शब्दो के विकृंत रूप भी दिखाई देते हैं ।

(२) भाषा का सौन्दर्य पक्ष :

भाषा भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं । इसके अभाव में भावानुभूति उसी प्रकार रह जाती है, जिस प्रकार गूंगे व्यक्ति द्वारा खाया हुआ गुड । भावो को शक्ति-सम्पन्न एवं सौन्दर्य युक्त बनाने के लिए साहित्यकार प्रतीकों, संकेतों, बिम्बों, अलंकारो, काव्यात्मक वर्णनो, मुहावरों लोकोक्तियों तथा सूक्तियों आदि का आश्रय लेता हैं, इन घटक तत्वों का यादव जी ने बड़ा ही सार्थक उपयोग किया हैं ।

कथा साहित्य भी कला का ही एक अंग हैं इसके लिए भी कलात्मक अभिव्यक्ति अपना विशेष महत्त्व रखती हैं । अभिव्यक्ति की इस सौन्दर्य सृष्टि के लिए साहित्यकार

नपी - तुली भाषा में वाँच्छित प्रसंगो एवं व्यापक अर्थों के लिए संकेतात्मक अर्थवाहक शब्दों का प्रयोग करता हैं ।

प्रतीकात्मक्ता :

गहन अनुभूतियों का चित्रण करने के लिए कहानी में प्रतीकात्मक्ता का आश्रय लिया जाता हैं । प्रतीक एक तरह का संकेत ही होता हैं, किन्तु उसमें अर्थ की निश्चयात्मक्ता होती हैं । पिछडी पीढ़ी के कहानीकारों में प्रेमचन्द्र, जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी और यशपाल ने बहुधा फ्राइडीस प्रतीकों का प्रयोग किया था । लेकिन नई कहानीकारों के प्रतीक सामाजिक जीवन सन्दर्भो से जुड़े हैं ।

यादवजी के कहानियों में प्रतीकों का अपना महत्त्व हैं । इन्होंने गाँव के सुन्दर पुष्प - पक्षी एवं प्रकृति के अन्य उपादनों को प्रतीक रुप में ग्रहण किया हैं इन्होंने मौलिक प्रतीकों का निर्माणकर मानवीय संवेदनाओ एवं सूक्ष्मतम अनुभूतियों की सुन्दर अभिव्यक्ति की हैं । यादव जी के कहानियों में प्रतीक के सम्बन्ध में डॉ. कु. माया शबनम लिखती हैं कि–

"भाई सूर्यदीन अहिन्दी भाषी क्षेत्र में कार्यरत होते हुए भी अपनी जमीन और भाषा को भूले नहीं हैं । यह इनकी रचनाधर्मिता और कर्तव्यनिष्ठता का प्रतीक हैं ।"[४९]

तो दूसरी और प्रयागसिंह चौहान यादव जी की भाषा - शैली के बारे में लिखते हैं कि –

"भाषा आँचलिक, मिश्रित देवनागरी, खडी बोली हैं । प्रतीक, व्यंग्य, अन्योन्ति के द्वारा सच को रुपापित किया हैं ।"[५०]

तो दूसरी और डॉ. जयसिंह व्यथित यादव जी की भाषा के बारे में लिखते हैं कि –

" डॉ. सूर्यदीन यादव अवधी भाषा-भाषी क्षेत्र सुल्तानपुर के एक किसान के बेटे हैं । काँधे पर हल, हाथों में कुदाली, बैलों की जोड़ी, खेत जोतता किसान, हरी धानी, नीली साड़ी पहने धरती खेतों में काम करती गाँव की नारियों, वन-बागों, पेड़-पौंधो, पशु पक्षियों, खेत-खलिहानों, ताल-तलैयों आदि की अपनी भाषा के माध्यम से उभारता हैं । उन्होंने दर्द जिया और दु:ख-सुख को पिया हैं ।"[५१]

'वह रात' कहानी संग्रह में रात प्राकृतिक जीवन का प्रतीक हैं । दिन के उजाले के बाद रात सारी रात जागती हैं । प्रकृति और मानव के बीच यह जीवन खेल चलता रहेगा । युगों - युगान्तरों तक । न रात चुकेगी न दिन थकेगा । स्त्री-पुरुष के मेल-बेमेल, जुडते-टूटते, रिश्ते-नाते मानवता के ही द्योतक होते हैं । वे सम्बन्ध कमजोर-जोर, उथले-गहरे कम ज्यादा हो सकते हैं । चाहे गाँव का 'भैया' (प्यारा भाई) हो या 'भीड' का परम्परावादी चौधरी । सूर्य - किरण हो या कोई चाँद - सितारा । देसुई ईख हो या पुण्यदायी आम का पेड़ । 'बिना बाप के बच्चे' की कथा हो या 'लौट आती कहानी' का कोढ़-दहेज । 'दहशत का हथौड़ा' हर काम पर पड़ता रहा हैं । धर्मानुयायी गाँव-गाँव, देश-परदेश में भक्ति-फेरी करते रहे हैं । अकेली परदेसिन आज भी जेठऊत की परछाई से उड़ती हैं । झरोखों से दिखता असुरक्षित जीवन हर शहर के बीच । जगत जहाँ होगा-गीता रचना होगी । फाटक खुलने के इन्तजार में 'सामंत में' पडी जान जागती रहेगी तब तक सुबह हो चुकी होगी उस रात की ।

'भीड़' कहानी में भीड़ एकता का प्रतीक हैं । तो 'किरण' कहानी में किरण घर भर का प्रकाश तिमिर को दूर करने का प्रतीक हैं । 'गयावार का पेड़' कहानी शहीद अमर का प्रतीक हैं ।

"आज उन पेड़ो के फल गाँव के सारे लोग खाते हैं । ये पेड गयावार के पेड हैं । लोग आज भी गया, बनारस, बद्रीनाथ, केदारनाथ, द्वारका जैसे तीर्थधामों के दर्शन करके लौटते हैं तो अपने पूर्वजो के नाम लगाये आम के पेड़ गयावार के नाम से संकल्प देते हैं ।"[५२]

'दहशत का हथौड़ा' कहानी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक हैं । एक पेड़ की दो शाखाओं की तरह शिवचन और तहमत आज भी पड़ोसी हैं । तहमद मस्जिद में नमाज पढ़ आते हैं और शिवचन मुंहार पर बने देवथान्ह पर पूजा - पाठ कर लेते हैं ।

इसी प्रकार 'परदेसी की एक रात' कहानी में पति से अलग हुई पत्नी का प्रतीक परदेशी शब्द हैं । बिना पानी की मछली की तडप जैसी चंदा पति से अलग होने पर तडपती हैं । 'झोंपड़ी का झरोखा' कहानी झोंपड़ी में रहती गरीब औरतों की कहानी हैं। जिन्हें ऊँची अट्टालिकाओं में संतोष नहीं मिलता, उन्हें इन झोंपड़ियों में तृप्ति नहीं मिल सकती हैं । 'जगत जहाँ गीता-रचना' कहानी में गीता मछली का प्रतीक हैं । तो 'फाटक खुलने के इन्तजार में' कहानी में सूअर पवित्रता एवं एकता के प्रतीक कहे जा सकते हैं । भगवान ने बाराह अवतार लिया था । इनमें कोई भेदभाव नहीं । 'भैया' कहानी प्यारे

भाई साहब का प्रतीक हैं । भैया जी किसी जाति विशेष का सूचक नहीं, या भैया शब्द दूसरे देश का हल्का - फुल्का शब्द भी नहीं हैं । भैया शब्द हिन्दी भाषा का प्रिय प्यारा प्रचलित शब्द हैं । 'सिंह के बेटे उर्फ इन्टरव्यू एक नाटक' में बकरा जातिवाद का प्रतीक हैं । इससे देश की एकता को खतरा हो सकता हैं । तो 'ऊसर जमीन' कहानी की नायिका ऊसर जमीन (बाज-औरत) का प्रतीक बताई गई हैं । तो 'किसानी' कहानी में लेखक ने बताया हैं । कि सबकी अपनी किसानी होती हैं । जिसके जो हुन्नर हैं, वही उसकी किसानी, विद्या तुम्हारा हुन्नर हैं । तो 'पहली यात्रा' कहानी में लेखक ने शहर को घनी आबादी का प्रतीक बताया हैं और आगे लेखक कहते हैं गाँव के लोग गाँव का स्वर्ग छोडकर शहर में रहकर नारकीय जीवन जीते हैं । तो 'ठनगन' कहानी में 'देहज प्रथा' पर लकीर का फकीर की तरह मानने वालों का प्रतीक हैं ।

वह तेरे सामने मुहँ नहीं खोलती गैरों के आगे इज्जत खोलेगी । नहीं मैं उसे बेपर्दा नही होने दूँगी । 'जीवन उपन्यास के पन्नों को समेटे हुए ऐसे चल पड़ा । जैसे जीवन के शुरु के पन्नों को समेटे हुए जा रहे हो । ए सब कभी मेरे आदमी थे । अब ये खुद अपने - अपने घर, गाँव, देश और खेतों के अपने आप आदमी हैं । कच्चे घरो का क्या भरोसा । आज हम भी गिर सकते हैं, कल तुम भी । मिट्टी के ही तो बने थे टूटकर मिट्टी में मिल गये । इसमें दु:ख और आश्चर्य क्या । सब कुछ तो हैं इसमें। सुन्दर गोरी देह । भरी पूरी अपने आप में एक औरत हैं । फिर इसके घर वाले इससे जलते क्यों हैं । कब तक खोदता रहूँगा । इन कुटकुतारों को । कब फूटेंगे अंकुर इस ऊसर जमीन में । बच्चे का माँ-बाप दोनों उसकी माँ होगी । नहीं चाहिए माँ के बच्चे को बाप । चल बेटा ..... कहीं, दूर .....नया समाज बनायेंगे । जहाँ किसी बच्चे को बाप ढूँढ़ने की जरुरत नहीं पड़ेगी ।

यादवजी ने अपनी कल्पना एवं अनुभूतियों से कुछ मौलिक प्रतिको की निर्मित की हैं, उदाहरणार्थ 'आम्बे बहार' कहानी में कनुआ लासा का प्रतीक हैं इसीलिए कनुआ जैसे लड़के गाँव के बच्चों को आम के लासा रोग की तरह बर्बाद करते हैं । तो 'लौट आती कहानी' लेखन की दुनिया में गलतफेंमियों का प्रतीक है । कितने सस्ते लेखक अच्छे में हैं और अच्छे खराब में हैं । समाज में सही लोगो की दुर्दशा हैं । सही रचना, सही लड़कियाँ, औरतें सबसे अधिक उपेक्षित हैं । आज़ भी धन की कींमत सबसे अधिक हैं । अच्छे-बुरे का भेदभाव समाप्त हैं । यादव जी की प्रतीक योजना के सन्दर्भ में डॉ. कु. माया शबनम लिखती हैं कि —

" भाई सूर्यदीन यादव ऐसे ही हटीले भावुक रचनाकार हैं, जो अपनी भावाभिव्यक्ति में भाषा-दीवार की एक ईंट भी नहीं देखना चाहते । उनका यह हठ युगानुरूप होने के कारण क्षम्य भी हैं । भाषा की वक्रता और खुरदुरापन ही जहाँ नवीनता और सौन्दर्य का प्रतीक हो, वहाँ तो बस भाव भरी अनुभूतियों, संवेदनाओं का ही स्वराज्य होता हैं । इस गुण से सूर्यदीन बखूबी परिचित हैं ।"[५३] तो दूसरी और 'वह रात' भी प्रतीकात्मक कहानी हैं लेखक युवा दिलों की धड़कन हैं, वे पात्रों के दिलों में उत्पन्न सच्ची कथा को अपनी कला के द्वारा प्रस्तुत करने में सफल हैं । 'शान की खातिर' कहानी में रामपुरी चाकू के लिए 'दादा' शब्द प्रतीकात्मक रुप में प्रयोग किया हैं ।

अत: यादवजी अधिकांश कहानियों के शीर्षकों में ही सरल एवं जटिल प्रतीकों की सृष्टिकर कहानी की कलात्मक्ता में वृद्धि की और अपनी मौलिक प्रतिमा का परिचय दिया हैं । इन्होंने प्रतीको के माध्यम से भाव एवं विचारो को प्रभावशाली ढंग से सम्प्रेषित करने में आशातीत सफलता प्राप्त की हैं ।

'ऊसर जमीन' को प्रतिबिम्ब बनाकर यादव जी ने साबित किया हैं कि मनुष्य की पौरुषता, लगन, चाह, परिश्रम, ऊसर जमीन को भी फलद्रुप बना सकती हैं । 'कच्चा घर' इस बात का प्रतीक हैं कि उस वृष्टि में समय की मार खाकर बलिष्ठ व्यक्ति हो या घर ठह जाते हैं । कोई स्थायी अमर नहीं होता हैं । 'ईख की कहानी' भी प्रतीकात्मक हैं । देसुई ईख बड़ी ही नरम और कर्मठ होती हैं । देसुई साद तनी रहती हैं । ईख नारी का प्रतीक हैं । प्रतीकात्मक्ता के सम्बन्ध में में विनीत दूबे लिखते हैं कि —

"यादव जी वास्तव में अपनी माटी से जुड़े हुए प्रकृति प्रेमी कवि हैं । वे यथार्थ को उसके मूल स्वरुप में रुपायित करते हैं । प्रकृति-मानव जीवन का प्रतिक हैं ।"[५४]

बयाचिड़ियाँ अपनी झोंझ (घर) अपने चोंच से बुनती हैं वैसा घर मनुष्य का इन्जीनियर नहीं तैयार कर सकता हैं । उस चिड़ियाँ की ऊन बुनकर जैसी कला को मनुष्य को सीखना चाहिए उसी तरह से बकरी, तोता, साँप आदि रचनाओं में भी कही गई है, सजीवों का प्रतीक रुप के कवि ने चित्रांकन किया हैं, भाषा काफी सरल एवं मधुर हैं । यदि प्रकृति संविधान और मानवीय संविधान में से एक भी खण्ड़ को पृथक कर लिया जाए तो समूचे संविधान का स्वरुप विस्थापित हो जाता हैं । कहानीकार के ही शब्दो में —

" रात प्रकृतिरथ जीवन का प्रतीक हैं "[५५] 'आँखे' कहानी का व्यंग्य एवं यथार्थ हमे छू जाता हैं आश्चर्य हैं —

"माता - पिता भी अपनी सन्तान को आँख मारना सिखाते हैं।"[५६] आँख प्रतीकात्मक हैं। 'चूहे साँप बन गये' प्रतीकात्मक हैं। मनुष्य अपने कुकृत्यों को निर्दोष प्राणियों पर थोप देता हैं, उसकी जीवंत कथा हैं। 'कच्चा घर' इस बात का प्रतीक हैं कि इस वृष्टि में समय की मार खाकर बलिष्ठ व्यक्ति को या घर ढ़ह जाते हैं। कोई स्थायी नहीं हैं। 'आम्बे बहार' भी गाँव के वातावरण में विकरण कराने में सफल हैं। अमवा और कनवा की तुक बंदी देखते ही बनती हैं। 'आम' जीवन का प्रतीक हैं। इस कहानी को पढ़ते - पढ़ते बगिया के आमों के स्वाद मिल जाते हैं।

बिम्बात्मक्ता :

बिम्बात्मक का प्रयोग भी नई कहानी में किया गया हैं। वैसे तो यह कविता का विषय हैं। कुछ कहानीकारों ने इसका प्रयोग किया हैं। बिम्बों के द्वारा कहानी में किसी विशेष स्थिति को सजीवता प्रदान की जाती हैं। इस कला में यादवजी ने अपना अपूर्व कौशल दिखलाया हैं। यादवजी ने बिम्ब विधान द्वारा वातावरण को सजीव एवं मार्मिक बनाने तथा पात्रों की मनः स्थिति उजागर करने में सफल हुए हैं।

यादवजी के बिम्ब योजना के बारे में सुरेश चन्द्र शर्मा लिखते हैं कि -

"इनकी कहानियों में प्रौढ़पन का, दिव्यता का, नव्यता एवं गुरुवा का जीवन संदेश भी समाहित हैं। चित्रों के अंकन में कहानी में चार-चाँद लग गए हैं। आँचलिक बिम्बों के चित्रांकन में डॉ. सूर्यदीन यादव सिद्धहस्त कथाकार हैं। साहित्य जगत इनकी "कीर्ति कौमुदी" का स्वागत और अर्चन करें, यही प्रभु से प्रार्थना है।"[५७]

'भीड़' कहानी में आज के संस्कृति और सभ्यता को जाहिर करती हैं। संगत बिम्ब प्रस्तुत करती हैं। नये पुराने का अच्छा मेल हैं। 'वह रात' कहानी रात में कमरे का एक बिम्ब सामने आता हैं। जो नायिका के जीवन में अँधकार लाता हैं। परदेशी की एक रात लेखक की तरह अनेक परदेशी गाँव में लौटते हैं। लेखक का अपना अनुभव भी काम आ गया हैं। भावों और अनुभवों का बड़ा सुन्दर चित्रण हैं। स्त्री - पुरुष के वास्तविक मनोभाव हैं, वियोग - संयोग की पूरी स्थितियों का वर्णन हैं। अच्छे बिम्ब विधान हैं। देहाती - संस्कृति व सभ्यता हैं, वही की भाषा - शैली हैं अल्हड़ और पावन प्रेम हैं। 'लेरुवा' कहानी में गाँव की फसल, जन, जानवर का सुन्दर वर्णन किया हैं। प्रकृति का मानवीकरण किया हैं। 'संध्या आँचल पसार कर उतर आई।' सुन्दर प्राकृतिक बिम्ब विधान हैं। 'वह रात' कहानी में लोकमन की हर थिरकन, पटकन, झटकन को कहानीकार ने बड़ी पैनी दृष्टि से देखा और महसूस किया हैं। लोकाचार एवं लोकरस

की अभिव्यक्ति के लिए कहानीकार ने जिस प्रकार की बिम्ब योजना, शिल्प सौन्दर्य और सहज सम्मोहयुक्त लोकशैली का सहारा लिया हैं । 'किरण' कहानी में मिष्ठान की मिठास ली जा सकती हैं जो स्वाद बिम्ब के रुप में देखा जा सकता हैं । मानवीय रिश्तों की कटुता और मिठास का सुन्दर चित्रण हैं । दिनों-दिन तिरोहित होते मानवीय जीवन मूल्यों पर एक प्रकाश बिखेरा गया हैं । तो 'वह रात' कहानी नर-नारी के मोहक जीवन बिम्ब की चित्रशाला हैं । बिम्बात्मक्ता के बारे में श्रीमती कांति अय्यर लिखती हैं कि-

"ग्राम्य आँचलिक अपभ्रंश शब्द, भाषा के प्रयोग में आप माहिर हैं । आँचलिक विशिष्ट शब्द प्रयोग से रचना की विशिष्टता बढ़ जाती हैं । कही-कहीं कुछ शब्दों के भाव समझने में शहरी पाठको को कठिनाई हो सकती हैं । बिम्ब योजना के साथ शब्द शक्ति एवं अभिव्यंजना शक्ति कहानी के भावों की मधुरता गरिमा में परिगत हो जाती हैं ।"[५८]

ग्रामीण बिम्बो के रुपांकन में कहीं-कहीं मुंशी प्रेमचन्द्र के 'ग्राम चित्रण' की याद आती हैं । प्रकृति के सजीव चित्रण हैं । गाँव के चित्रण उनकी संस्कृति, सभ्यता और धार्मिक कृत्यों का सबसे अधिक महत्त्व हैं । सुन्दर बिम्ब और दृश्य चित्रण हैं । सबके साथ बाल सुलभ चेष्टाएँ भी वर्णित हैं । आँचलिक शब्दावली का प्रयोग यादव की कविता का अनिवार्य शिल्प हैं । साथ ही वह ग्रामीण संस्कृति के जीवंत चित्रांकन के लिए उतना ही आवश्यक हैं । क्वाचित-प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से भी कवि ने अपने कथ्य का हृदय एवं संवेद्य बना दिया हैं । लोकजीवन का माधुर्य और लोक-संस्कृति से गहन जुड़ाव तो आपकी रचनाओं का वैशिष्य हैं ही । प्रकृति के कण-कण को अपने संवेदनशील करो का संस्पर्श से आपने जीवंत बनाया हैं । सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि दर्शनीय हैं । 'गटई झुकाना', 'उठना और मोड़ना' अपने भीतर निहित दृश्य बिम्ब के कारण नितांत चित्रोपम बन पड़ा हैं ।

डॉ. सूर्यदीन यादव की कहानियों में बिम्ब के बारे में सुरेश चन्द्र शर्मा लिखते हैं कि —

"जिस दृश्य और बिम्ब को मैं महसूस किया करता था, वे सारे दृश्य और बिम्ब आपकी इन तीनों कृत्तियों में बड़े ही साफ सुथरे ढंग से चित्रित और रुपायित हुए हैं, 'जीवन के सच' का सुन्दर चित्रण आपकी इन कृतियों में हुआ हैं । गाँव आज भी चाहत मिठास के अक्षय श्रोत तुल्य हैं । आवश्यक्ता हैं गाँव की सादगी, गाँव के गवई पन के बनाये रखने की । ग्रामीण जीवन की सच्चाई एवं ग्रामीण संस्कृति के मोहक रुप की झाँकी 'फागुन बीते जा रहे', 'पहली यात्रा' और 'माँ का आँचल' जैसी कृतियों मे दृष्टि गोचर हैं ।"[५९]

'दूसरा सफर' कहानी संग्रह की दो – तीन कहानियों को छोड़कर शेष सभी कहानियाँ श्रेष्ठ हैं । यह मानव जीवन की संवेदनात्मक अनुभूतियों को स्पर्श करते हुए अपनी एक अलग पहचान व शैली की मिशाल हैं । शहर और गाँव के बीच आज के इंसान की जिन्दगी खण्ड़ित बिम्ब का आकार धारण कर चुकी हैं । वह गाँव का अतीत छाड़ नही सकता । शहर परदेश लगता हैं अतः जीवन सफर दूसरा सफर लगता हैं । प्रतीकों के माध्यम के जिस प्रकार कहानीकार अपनी कृति को पूर्णता प्रदान करता हैं, उसी प्रकार बिम्ब योजना के माध्यम से वह कृति को वैविध्य एवं व्यापकता प्रदान कर उसमें सौन्दर्य की सृष्टि करता हैं । बिम्ब किसी वस्तु या गुण की प्रति छाया के रुप में अस्तित्व ग्रहण करता हैं । अतः निश्चित रुप में मूल सृष्टि के स्थान पर यह गुण पुर्नसृष्टि हैं । कहानी के माध्यम से जो कुछ अभिव्यक्त होता हैं, वह वस्तु जगत अथवा कहानीकार के कल्पित जगत का प्रतिबिम्बत रुप ही तो हैं ।

कथाकार सूर्यदीन यादव जी ने अपने साहित्य में बिम्ब – विधान द्वारा वातावरण को सजीव एवं मार्मिक बनाने में अपूर्व कौशल दिखाया हैं । उनके समस्त कथा साहित्य में बिम्ब योजना प्रचुर मात्रा में सफलतापूर्वक प्रस्तुत की गई हैं । उस तरह यादव जी ने बिम्ब सृष्टि द्वारा वातावरण की निर्मित मात्र सौन्दर्य के लिए नहीं बल्कि पात्रों के अंतःकरण को उजागर करने की अनिवार्यता के लिए की हैं । उन्होंने दृश्य बिम्बों का बहुलता से उपयोग किया हैं । तो अन्य केन्द्रिय बिम्बों के छुटपुट उदाहरण इनकी कहानियों में देखने को मिलते हैं । 'ऊसर जमीन' को प्रतिबिंब बनाकर यादवजी ने साबित किया है कि मनुष्य की पौरुषता, लगन, चाह, परिश्रम ऊसर जमीन को भी फलद्रुप बना सकती है।

सांकेतिक्ता :

भावों विचारों एवं मनःस्थितियों के सांकेतिक रुप में व्यक्त करने के लिए किसी सन्दर्भ विशेष अथवा परिवेश चित्रण द्वारा अभीष्ट की और संकेत किया जाता हैं । किसी सन्दर्भ विशेष से सांकेतिक अभिव्यक्ति का सबसे सटीक उदाहरण यादव जी की 'झोंपड़ी का झरोखा' कहानी में निहित हैं –

"तुम लोग इन बेघर लोगो की गरीबी और बेबसी का फायदा उठाते हो । ये गरीब लोग कोई बुरा धन्धा नहीं करते हैं । तुम लोग इन्हें गलत समझकर इनका गलतउपयोग करते हो । तुम लोग नशे में घास – फूँस की खुली झोंपडियों में घुस जाते हो । तुम लोग बड़े घरों के लगते हो । अरे जिन्हें ऊँची अट्टालिकाओं में सन्तोष नहीं मिलता, उन्हें इन झोंपड़ियों में तृप्ति नहीं मिल सकती हैं ।"[६०]

परिवेश चित्रण में साकेतिक्ता के दो रुप मिलते हैं —

(१) प्रकृति - चित्रण

(२) वस्तु चित्रण में

यादव की कहानियों में सांकेतिक्ता का दोनों रुप विद्यमान हैं । प्रकृति - चित्रण द्वारा सांकेतिक्ता का उदाहरण 'जन्म' कहानी में द्रष्टव्य हैं — ढ़ाहा गाँव की तमाम असुविधाओं की और संकेत हैं । वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के युग में गाँव आवश्यक सुविधाओं से वंचित हैं ।

"डागडर - फागडर न जाने कैसे हो ? पैसा आकर मांगे । न मिले तो जिन्दा को मार दें ।"[६१]

दूर दराज में स्थिति गाँवों की बुर्जुग माताएँ जाने - अनजाने भारतीयता की रक्षा के लिए डॉक्टर को भी, बहू के पास फटकने नहीं देती हैं । यादव जी प्रकृति सौन्दर्य चित्रण में भी अपना सानी नहीं रखते । पाठको को प्रकृति के मध्य खड़ाकर ग्राम्य आँचल में ले जाकर वहाँ के खेत, खलिहान, बाग, तालाब, वृक्ष, फल-फूल, आम मंजूरी, महुआ, करौंदा आदि सभी का स्वाद चखाते - चखाते गन्ने के खेत में खड़ा करते हैं ।

'तमाशा' कहानी में ध्वन्यात्मक भाषा का सहज प्रयोग हैं । खिलाड़ी या नट पैसे के लिए करिश्में दिखाता हैं, खतरे मोल लेता हैं । कहानी परम्परिक दारिद्रय की और संकेत करती हैं । 'मन्दिर-मस्जिद' में धार्मिक रुढिचुस्त मान्यताओ को तोड़कर मिल-जुलकर रहने का संकेत हैं । सदियों से हिन्दू-मुसलमान साथ रहते आ रहे हैं । भारत अब उनकी भी जन्मभूमि हैं । हम कब तक एक दूसरे को धिक्कारते रहेंगे । धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला हैं । उसमें किसी की दखलअन्दाजी नहीं होनी चाहिए । सृष्टि का रचियता एक महासत्ता हैं । उसे ईश्वर की संज्ञा दे दी गई हैं । तो 'ऊसर - जमीन' कहानी की नायिका सवरकी ऊसर-जमीन की संकेत हैं वह स्वयं कहती है कि दादा मैं ऊसर जमीन जैसी हूँ। मेरी और कोई देखता तक नहीं । सब असगुनही मानते हैं ।

प्रकृति आज भी अपना सर्वस्व गाँव पर न्यौछावर करती हैं । गाँव के इर्द-गिर्द लम्बे चौड़े-बागान शीतल छाया प्रदान करते हैं । किन्तु आदमी अन्दर ही अन्दर बहमी लू से झुलसता रहता हैं । गगनचुंबी आम, महुए के विशाल काया हरे भरे जहाजी वृक्ष अपने खट्टे-मीठे स्वादिष्ट फल हर साल दे जाया करते हैं । बागानों से जुड़ी लम्बी-चौड़ी सिवानों में रबी, खरीफ और जायद तीनों फसलें प्रतिवर्ष मन को हर लेती हैं । 'किरण'

जीवन से लुप्त हो प्रकृति में अच्छादित किरण की वेदना भरी स्मृति एवं दीपा की नारी सुलभ ईर्ष्या । बाप-बेटी के तनावपूर्ण सम्बन्ध । प्रेम के अभाव में पीड़ित संदिग्ध मानव सम्बन्ध के एक विषम भाव में जीती लड़की की कहानी हैं । 'बिना बाप का बच्चा' कहानी में एक और नारी हैं जो मातृत्व को तो पोषती हैं । मातृत्व का धर्म भी निभाती हैं । बिना माँ के बच्चे को माँ की स्नेह सलिला से तृप्त रखती हैं । अन्त में घटस्फोट होता हैं जिसके कोई नहीं होता उसकी माँ अवश्य होती हैं । प्रकृति भी सभी जीवों की माँ हैं- यह परम सत्य हैं ।

किन्तु संकेतो को ज्यादा सूक्ष्म नहीं होना चाहिए । डॉ. नामवर सिंह के अनुसार—

"संकेत इतना भी बारीक हो सकता हैं कि पाठक ताकता ही रह जाय । कभी कहानी की और और कभी लेखक के अदृश्य मोह की और । ऐसी स्थिति में कहानी सवर्था विचार शून्य हो जाने का भारी खतरा हैं ।"[६२]

सूर्यदीन यादव की कहानियों में संकेतात्मक्ता के बारे में श्रीमती कान्ति अय्यर लिखती हैं कि —

"यादवजी कहानीकार के रुप में गाँव के परिप्रेक्ष में बदलते समय की तरफ अपनी सशक्त कलम द्वारा पाठकों का ध्यान बराबर आकर्षित करते रहे हैं । उन्होंने समस्याओं को बराबर समझा और नया रास्ता तलाश किया । उन्होंने कहानी के माध्यम से समय के बहाव के साथ गाँव की सम्पूर्ण जहिलताओं में उलसी परिस्थितियों में एक नई चेतना, नया संदेश, समाधानवादी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी हैं । समाज में अमन-चमन लाने का प्रत्यक्ष भरपूर प्रयत्न किया हैं । इन कहानियों द्वारा शिक्षा प्रसार का महत्व भी स्पष्ट कर गाँव की प्रजा को शिक्षित करने का संकेत दिया हैं ।"[६३]

'मन्दिर - मस्जिद' में धार्मिक रुचिचुस्त मान्यताओं को तोड़कर मिल - जुलकर रहने का संकेत हैं । सदियों से हिन्दू - मुसलमान साथ रहते आ रहे हैं । भारत उनकी जनम भूमि हैं ।

काव्यात्मक्ता :

यादवजी का गाँव के प्रति स्वाभाविक लगाव हैं । वहाँ की प्रकृति का भावनापूर्ण काव्यात्मक वर्णन 'जगत जहाँ गीता-रचना' कहानी में द्रष्टव्य हैं ।

"इस कहानी में दो भाई दोनों की प्रेयसी, बाद में पत्नी । अपनी - अपनी मुग्धा अवस्था के प्रेमोत्सर्ग अनुभूतियों का वर्णन करती हैं । इसमें कुछ खास उल्लेखनीय घटना,

कथ्य कथन मुझे नहीं लगा । किन्तु मुग्धावस्था की प्रेम की प्रथम अनुभूति को काव्यात्मक एवं कलात्मक ढ़ंग से प्रेम प्रसंगो के मर्म को व्यक्त किया गया हैं । प्रेम की अभिव्यक्ति में भी यादवजी कोमल भावनाओं को मानव मन का श्रृंगार बना देते हैं ।"[६४]

यादवजी बचपन में गाँव में वहां नहीं रहे बल्कि गाँव उनके अन्दर बसा हुआ था, जो आज उनकी रचनाओं में प्रस्फुटित हो रहा हैं, नवीन कहानी संग्रह में काव्य की बिम्ब योजना का सुन्दर प्रयोग हुआ हैं । कहीं - कहीं काव्यात्मक, गद्य - पद्य का आनन्द भी मिलता हैं । दूसरे सफर की तरह इसमें अनावश्यक संवाद से वे बचते रहे हैं । 'वह रात' कहानी की भाषा, शैली एवं प्रस्तुत काव्यात्मक एवं व्यंजनात्मक भाषा शक्ति से भरपूर हैं।

अलंकारिक्ता :

अलंकारो के प्रयोग से भाषा चमत्कार युक्त, कलात्मक तथा और अधिक संप्रेषणीय बन जाती हैं । इनके प्रयोग से एक और भाषा का सौन्दर्य बढ़ता हैं । तो दूसरी और अर्थ में वृद्धि होती हैं । यादव जी की कहानियों में अलंकार की भरभार हैं ।

यादवजी ने उपमालंकार का बहुलता से प्रयोग किया हैं । इन्होंने दैनिक जीवन से लेकर पौराणिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्र से उपमाओं का सुन्दर समावेश किया हैं । यादवजी ने स्वयं भोगे हुए यथार्थ, कल्पनालोक और मुहावरों के उपमानों का चयन करने में भी निपुण हैं ।

मुहावरों और लोकोक्तियों का उद्‌गम लोक जीवन से होता हैं । यादव जी आँचलिक साहित्यकार के रुप में जाने - जाते हैं । इसी कारण इनकी भाषा में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का बहुलता से प्रयोग मिलता हैं । यादवजी की ग्रामीण सम्बन्धित कहानियों में ग्रामीण में व्यवहृत मुहावरों एवं लोकोक्तियों का अत्याधिक समावेश हुआ हैं । अन्य कहानियों में साहित्यिक व स्वयं निर्मित मुहावरों और लोकोक्तियों की भरमार हैं ।

यादव जी ने मुहावरों और लोकोक्तियों का बहुलता उपयोग कर सामान्य - जीवन की सहज अभिव्यक्ति की हैं । इनके प्रयोग से अभिव्यक्ति अधिक प्रभावशाली, सार्थक और धारदार बनी हैं । तथा पात्रों की स्थिति व परिवेश अधिक स्पष्ट रूप से उभरा हैं।

भाषा में चमत्कार, सौन्दर्य और अर्थ गाभीर्य लाने के लिए सूक्तियों का भी बहुतायत से प्रयोग किया हैं ।

अनुभवों और ठोकरों की आँच में तपकर व्यक्तित्व प्रखर होता हैं । पलायन करने से संघर्ष करना अच्छा हैं । अर्न्तव्यथा और पीड़ा के अनुभवों से, ठोकरों में जो चीज

जल्दी मिल जाती हैं, वह हैं भावुकता, जिसे लोग कविता की संज्ञा देते हैं । नारी के वात्सल्य और उसकी माता के चरणों में नतमस्तक होते हैं । नारी सृष्टि की सुन्दरतम और श्रेष्ठ कृति हैं । संघर्ष की आँच में तपकर, अभावों के अंगारों में कुन्दन-सा दहक कर ही जीवन पूर्णता को प्राप्त होता हैं । नारी जब तक प्यार और पीड़ा की आँच में तपकर विवशता की आँसू बहाती हैं, उन आँसुओं की एक - एक बूँद मानव जीवन के बड़े से बड़े सत्य के लिए भी स्पर्धा की वस्तु हो जाती हैं । नारी विष पीती हैं, विष वमन नहीं करती, उसके वक्ष से हंमेशा अमृत ही झरता हैं । जिसे भौंरें को पराग केशर का सुख मिला होता हैं । वह सबसे ज्यादा गुन-गुन-गुन-गुन करता हैं । नारी और नदी का जैसा चलायमान चित्त पुरुष का होता हैं ।

'लिलार' कहानी में भारत देश वस्तु प्रधान देश हैं । इसमें ऋतुओं की अधिक चर्चा हैं । माह - माह का अपना प्रधान विशेष हैं । लोक गीतों और मुहावरों का प्रयोग किया गया हैं ।

बोली-भाषा :

नई कहानी में नये शैल्पिक प्रयोग के साथ - साथ नये भाविक प्रयोग भी हुए हैं । नई कहानी की भाषा, अलंकार के ताम - झाम से युक्त हैं । इसलिए पाठकों से सीधा जुड़ाव हैं । फणीश्वर नाथ रेणु, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, अमरकांत, मन्नू भण्ड़ारी, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, मार्कण्ड़ेय इत्यादि कहानीकारों की भाषा बोली जाती हैं लेकिन उच्चवर्ग रोजाना के व्यवहार में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करता हैं । विभिन्न जीवन धाराओं को लेकर लिखी गई कहानियों में भाषा भी मिलता हैं ।

यादव जी की भाषा और शिल्प की विशेषता यह हैं कि कहानी ने अपने कथ्य के साथ बिना जताए, आदमी को चाहने, उसे बार - बार देखने और जब वह न रहे, तब स्मृतियों के माध्यम से उसे फिर देखना ही नहीं, नये सिरे से पहचानने तथा उसकी जरुरत को महसूस करने की प्रक्रिया को समझा दिया । बता दिया कि कालकांड़ में अपने को तलाशने की प्यास भी हैं, क्योंकि देखने वाला ही अब कालखंड का साक्षी हैं । भाषा ने यहाँ दार्शनिक सुख अख्तियार कर लिया । उसके बिना जीवन दर्शन को पकड़ना सम्भव नहीं था ।

उनकी भाषा के सौन्दर्य में उपमाओं का प्रयोग बेजोड़ हैं जो रचना के अर्थ में दोहे जैसी गहराई भर देते हैं । उनकी कहानियों में बेहद संवेदनशील भाषा होने के कारण उनकी कहानी कहीं अटकती नहीं हैं । किसी भी बात का चित्रण करने में भाषा बहती

सी चली जाती हैं । यह ऐसी भाषा हैं । जिसे उन्होंने जीवन यह कहिये जीवन के मीठे-तिक्त अनुभवों से सीधे - सीधे कमाया हैं, इसीलिए ऐसा कहीं नहीं लगता कि जो वह कहना चाहते हैं, कह नहीं पाये । इसी तरह - फिलहाल यादवजी की कथ्य - शिल्प एवं भाषा - शैली की अदा अवध के हर तरह के संघर्षो को समेटे हुए हैं ।

'पहली यात्रा' कहानीकार के निजी संस्मरण को लिए हुए समाहत लगती हैं, जिसमें रेल यात्रा प्रसंग बच्चों का रोमांचक आकर्षण प्रकट होता हैं । अन्य कहानी उपवन में विचरण करने से पारिवारिक संघर्ष मानसिक तनाव, वर्गीय भेदभाव, धनवानों का अत्याचार, नारी शोषण, साम्प्रदायिक विषमता, बेगारी और गुन्ड़गर्दी का रसपूर्ण चित्रण असरदार भाषा रसिक प्रवाह के द्वारा प्रकट होता हैं ।

यादव जी की भाषा-शैली के बारे राजेन्द्र यादव जी लिखते हैं कि — "डॉ. यादव जी की भाषा-शैली विशेष-रूप से ग्रामीण हैं, शुद्ध खड़ी बोली और देवनागरी भाषा के साथ अवधी भाषा का प्रभुत्व हैं ।"[६५]

'वह रात' कहानी संग्रह की सभी कहानियाँ कथारस लोभी पाठकीय मन को तृप्त करने में सक्षम हैं । भाषा रसीली और चटपटी हैं । सूर्यदीन जी भाव व्यंजना के सशक्त कवि हैं । उनकी भावाभिव्यक्ति में भाषा कहीं बाधक नहीं बनता । आँचलिक और खड़ी बोली से संयुक्त भाषा जगह-जगह पाठकों को बाधा अवश्य पहुँचाती हैं । किन्तु यथार्थ की अंजलि में भावों का उमड़ता सागर बरबस खींचकर उन्हें अपने में डुबो देता हैं । इनकी भाषा-शैली के बारे में डॉ. कु. माया शबनम लिखती हैं —

"मुझे अनायास हजारी प्रसाद द्विवेदी की वह उक्ति याद आती हैं जिसमें उन्होंने संत कबीरदास को भाषा का डिक्टेटर कहा हैं भाई सूर्यदीन भाषा के डिक्टेटर तो नहीं किन्तु भावानुभूति की अभिव्यक्ति के डिक्टेटर अवश्य कहे जा सकते हैं । अपनी कच्ची-पक्की, खट्टी, मीठी भावानुभूति से वह पाठक को घेर लेने में सक्षम हैं । भले ही वह घेरा कच्ची मिट्टी का ही क्यों न हो ।"[६६]

तो दूसरी और डॉ. राम दरश मिश्र के अनुसार —

"भाषा कोई ओढ़ी हुई चीज नहीं होती । वह अँचल की देन होती हैं । इसलिए आँचलिकता के रंग में भाषा का रंगना अनिवार्य नहीं होता । बल्कि जो जैसा पात्र हैं, वह अपने अनुसार अँचल से प्राप्त भाषा में ही बोलता हैं । लेखक जोर-जबरदस्ती से पात्रों के ऊपर अपनी भाषा नहीं थोपता और दृढ़ पात्र को उनकी अपनी भाषा-बोली में बोलने

की छूट देता हैं । हो सकता हैं आँचलिकता के जितने रंग हो उतने रंग भाषा के न हों। इस लिए आंचल का हर रंग, हर घटना, हर दृश्य अकेली एक भाषा द्वारा कैसे आ सकता हैं।"[६७]

डो. सूर्यदीन यादव आँचलिक परिवेश भाषा, वेशभूषा, एवं मानसिक्ता से गहरा परिचय रखते हैं । कहानीकार अपने पात्रों को ग्राम्य परिस्थितियों के जाल में फसा, अपने आपको तिल-तिल विकसित होते हुए देखने को विवश हैं, फिर भी प्रकृति की गोद में रहने के कारण खेत-खलिहान, बाग, तालाब, वृक्ष, फल-फूल, आम, फँसन, टूटनं एवं मिटन में जीने का आनन्द हैं । 'वह रात' कहानी की भाषा शैली एवं प्रस्तुति एवं व्यंजनात्मक भाषा शक्ति से भरपूर हैं ।

'दहशत का हथौड़ा' कहानी प्रेमचन्द्र की कहानी के स्तर की अति उत्तम कहानी हैं । कथा शिल्प, भाषा-शैली की दृष्टि से भी एक श्रेष्ठ रचना हैं । अलगू चौधरी और जम्मुशेख प्रेमचन्द्र के कहानी पात्र यहाँ पर शिवचन और तहगत की दोस्ती, वाकई भावविभोर कर गई । यथार्थ को उभारने के लिए भाषा मौलिक होना चाहिए । भाषा छीन लेने से पात्र कठपुतली और परिवेश से कटे प्रतीत होते हैं । जहाँ पढ़े-लिखे एवं चिन्तन-मनन करनेवाले पात्र हैं । वहाँ लेखक ने भाषा के मिश्रित रुप को अनावश्यक माना हैं। और घटना तथा प्रसंगानुसार परिमार्जित शिष्ट भाषा का प्रयोग कर अपनी भाषा सामर्थ्य का परिचय दिया हैं । यादवजी की कहानियाँ सीमित संवेदना और संकुचित जमीन की कहानियाँ नहीं हैं । इनकी कहानियों का एक छोर गाँव में हैं तो दूसरा शहर में । इसी कारण इनकी भाषा किसी एक साँचे में ढ़लकर नहीं रही हैं । वह पात्र स्थान और स्थिति के अनुकूल बनकर आई हैं । मुहावरों लोकोक्तियों और सूक्तियों का सहज उपयोग करने में उनकी कुशलता सराहनीय हैं । उनकी भाषा सहज प्रतीकों और संकेतो के सहारे सूक्ष्माति सूक्ष्म भावों एवं चित्रों को कलात्मक ढ़ंग से रुपायित करने में समर्थ हैं । दृश्य बिम्बों के प्रयोग से उसमें चित्रात्मक्ता आ गई हैं । उसमें काव्यात्मक्ता हैं और अलंकारिक सौन्दर्य देखते ही बनता हैं । उन्होंने अपनी सधी हुई लेखनी एवं मझी हुई भाषा द्वारा साहित्य को नई गति एवं दिशा प्रदान की हैं ।

डॉ. सूर्यदीन यादव की भाषा - शैली के बारे में श्रीमति कांति अय्यर लिखती हैं कि —

"डॉ. सूर्यदीन यादव एक सफल आँचलिक कहानीकार के रुप में हमारे सामने आते हैं । अपने जीवन-प्रवाह में वे कही भी अकेले नहीं हैं । वृद्ध परिवेश, विशाल जनसमूह गाँव, जमीन, बाग, सिवान फसलें, ऋतुएँ, मौसम, उत्सव, पर्व सब कुछ किसी न किसी रुप में व्यंग्यात्मक, प्रतीकात्मक, एवं बिम्बात्मक रुप से कहानी प्रवाह में स्वयमेव प्रवाहित

होते हैं । भाषा-शैली की जीवंतता-परिवेश के साथ जुड़े रहना माटी के प्रति अगाध प्रेम की उनकी कहानियों को प्रवाहमय एवं जीवंत बनाता हैं । हाँ ग्रामीण शब्दों एवं बोलियों के अंश अंत में लिखे गये होते तो सुखी पाठको को समझने में सुविधा होती ।"[६८]

यादवजी की भाषा-शैली के बारे में रजनीकान्त शाह लिखते हैं कि– "'अपने-आदमी', 'ऊसर जमीन', 'पहली यात्रा', 'मन्दिर और मस्जिद' तथा तालाब की मछलियाँ कहानियाँ अच्छी लगी । आँचलिक स्थानीय बोली का प्रभाव हैं, जिससे भाव ग्रहण में कुछ परेशानी होती हैं । कुछ पात्र ठेठ बोली में बात करते-करते स्थानिक भाषा प्रयोग करने लगते हैं । इससे कहानी का कसाव ढ़ीला पड़ जाता हैं ।"[६९]

तो दूसरी और जे. आर. यादव सूर्यदीन यादवजी की भाषा-शैली के बारे में लिखते हैं कि —

" आपकी भाषा-शैली सम्राट स्वर्गीय प्रेमचन्द्र की याद दिला जाती हैं । जिस प्रकार दूध स्वयं अमृत समान हैं, किन्तु जब उसमें चांवल व शक्कर मिला दिया जाता हैं, तो वह दूध पाक (खीर) बन जाता हैं । जो उससे (दूध) भी स्वादिष्ट होता हैं । उसी प्रकार आपकी रचनाओं में खड़ी बोली में अवधी भाषा के शब्दों का समिश्रण खीर सदृश हैं।"[७०]

भाषा अभिव्यक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं और अभिव्यक्ति मानव-मन की सहज-वृत्ति हैं । प्रत्येक रचनाकार को संवेदना के धरातल पर भाषा के प्रति सजग रहना पड़ता हैं । रचना की सफलता भाषा पर ही निर्भर करती हैं । यादवजी की मान्यता हैं कि भाषा ऐसी हो जो सत्य की चोट उभारने में समर्थ हो । यादवजी की भाषा मर्म को झकझोर देनेवाली भाषा हैं । यादवजीं हर बात साफ-साफ करने के आदी हैं । सूर्यदीन की शब्द सम्पदा देखें तो इसमें अधिकांश शब्द चिर-परिचित से लगते हैं । उसमें अपनापन दिखाई देता हैं । आत्मीय शब्दावली में प्रयोग के कारण यादव की भाषा का शब्द हमारा अपना, हमारी अनुभूतियों का वाहक और वर्तमान परिवेश में उभरी स्थितियों का हम सफर लगता हैं । इसमें ऐसे शब्द हैं जो जिंदगी की भाषा का निर्माण करते हैं । जीवन के गहन अर्थ-संदर्भो की खोजी इस संदर्भ भाषा ने खेत, पेड़, चूल्हे-चौपाल, सड़क, शहर, लोकमंच, राजनीति, अर्न्तमन के उतार-चढ़ाव मानसिक चेतना को जगाने वाले चिकोटी सदृश शब्दों से कथ्य और रुप का अंतः संबंध बनाए रखा हैं । इस कारण सूर्यदीन जी की भाषा सरल एवं सहज संवेद्य हैं । अपनी भाषा के कारण ही पाठक यादवजी के साथ सहजता से तादात्मय स्थापित करते हैं ।

• • •

संदर्भ सूचि

क्रम	कृति का नाम	पृष्ठ
१.	आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर	०८२
२.	वह रात कहानी संग्रह सं. सूर्यदीन यादव	०४४
३.	वह रात कहानी संग्रह सं. सूर्यदीन यादव	०२२
४.	वह रात कहानी संग्रह सं. सूर्यदीन यादव	०६१
५.	आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर	०१६
६.	दूसरा सफर कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	१०२
७.	दूसरा सफर कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०५८
८.	दूसरा सफर कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	११४
९.	सृंजन मूल्यांकन पत्रिका सं. स्वामी शरण	१४९
१०.	वह रात कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०१८
११.	वह रात कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०२२
१२.	वह रात कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०४२
१३.	वह रात कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०४४
१४.	वह रात कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०५१
१५.	वह रात कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०७८
१६.	पहली यात्रा कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०२७
१७.	पहली यात्रा कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	१२२
१८.	पहली यात्रा कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	११२
१९.	आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर	०१५
२०.	पहली यात्रा कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०१६
२१.	पहली यात्रा कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०९२

२२. पहली यात्रा कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०७७

२३. वह रात कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ००५

२४. दूसरा सफर कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०६९

२५. दूसरा सफर कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०४३

२६. दूसरा सफर कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०२६

२७. पहली यात्रा कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव १०१

२८. वह रात कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०६८

२९. वह रात कहानी संग्रह सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०८५

३०. जहाँ देने की अपेक्षा पाया सूर्यदीन यादव आवरण पृष्ठ से

३१. जहाँ देने की अपेक्षा पाया सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०४८

३२. जहाँ देने की अपेक्षा पाया सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०४६

३३. लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान ०७८

३४. लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान ०६०

३५. लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान ०२७

३६. लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान ०७७

३७. जहाँ देने की अपेक्षा पाया सं. डॉ. सूर्यदीन यादव ०४१

३८. लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान ०४१

३९. लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वर सिंह चौहान / अरुणकुमार आर्य ०४९

४०. लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वर सिंह चौहान / अरुणकुमार आर्य ०६२

४१. लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वर सिंह चौहान / अरुणकुमार आर्य ०६४

४२.	लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वर सिंह चौहान / अरुणकुमार आर्य	१००
४३.	साहित्य परिवार - परिशिष्ट अंक - २ सं. डॉ. सूर्यदीन यादव	०६१
४४.	बृहद हिन्दी कोश	२३९
४५.	हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिवेश डॉ. प्रेम भटनागर	०३२
४६.	दस्तावेज पत्रिका - सम्पादक - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	५७
४७.	लोकजीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान	३४
४८.	कथाकार सूर्यदीन यादव सं. डॉ मायाप्रकाश पांडे	१५
४९.	लोक जीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान	३५
५०.	लोक जीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान	४४
५१.	लोक जीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान	१२२
५२.	वह रात कहानी संग्रह संपादक डॉ. सूर्यदीन यादव	३७
५३.	कथाकार - सूर्यदीन यादव सं. मायाप्रकाश पांड़े	२८
५४.	लोक जीवन के कवि - सूर्यदीन यादव सं. ईश्वर सिंह चौहान	५६
५५.	कथाकार सूर्यदीन यादव सं. मायाप्रकाश पांड़े/दयाशंकर त्रिपाठी	३८
५६.	कथाकार सूर्यदीन यादव मायाप्रकाश पांड़े/दयाशंकर त्रिपाठी	४१
५७.	कथाकार सूर्यदीन यादव मायाप्रकाश पांड़े/दयाशंकर त्रिपाठी	२१
५८.	आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर	७१
५९.	कथाकार सूर्यदीन यादव सं. मायाप्रकाश पांड़े/दयाशंकर त्रिपाठी	१३४
६०.	वह रात कहानी संग्रह सं. सूर्यदीन यादव	६९
६१.	पहली यात्रा कहानी संग्रह सं. सूर्यदीन यादव	९
६२.	जयशंकरप्रसाद की कहानियों में शिल्प - विधान - अशोक गुप्ता	
६३.	कथाकार सूर्यदीन यादव मायाप्रकाश पांड़े/दयाशंकर त्रिपाठी	१७

६४.	आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर	८४
६५.	कथाकार सूर्यदीन यादव सं. मायाप्रकाश पांड़े/दयाशंकर त्रिपाठी	३५
६६.	लोक जीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान	३४.
६७.	लोक जीवन के कवि सूर्यदीन यादव सं. ईश्वरसिंह चौहान	११२
६८.	आँचलिक कथा सर्जक सूर्यदीन यादव सं. श्रीमती कांति अय्यर	६९
६९.	कथाकार सूर्यदीन यादव सं. मायाप्रकाश पांड़े/दयाशंकर त्रिपाठी	१२८
७०.	कथाकार सूर्यदीन यादव सं. मायाप्रकाश पांड़े/दयाशंकर त्रिपाठी	१३६

• • •